ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ

A Social Science Research Journal

वर्ष 20 अंक 81 एवं 82 ■ संयुक्तांक ■ अप्रैल-सितम्बर, 2015

सम्पादक
डॉ.हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ *A Research Journal of Social Sciences*

वर्ष 21 अंक 81 एवं 82 संयुक्तांक अप्रेल–सितम्बर, 2015

❐

सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

email- mpdsaujn@gmail.com

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श

पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि
प्रख्यात लेखक एवं साहित्यकार,नईदिल्ली

डॉ. श्यामसुन्दर निगम
निदेशक, श्री कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. जयप्रकाश कर्दम
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. आर. जी. सिंह
पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र,
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू

डॉ. रहमान अली
पूर्व आचार्य,प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति व पुरातत्व अध्ययन शाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सह–सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक
पूर्वदेवा में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है.
सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

अनुक्रम

1-	सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार– कारण और निदान	डॉ. आर. जी. सिंह	*1*
2-	अन्याय और अनाचार के विरूद्ध विद्रोही लोक नायकों और लोक नायिकाओं की शौर्य गाथाऐं	डॉ. पूरण सहगल	30
3-	भारत में ब्रिटिश साम्राज्य और उसका प्रभाव	डॉ. धमेन्द्र कौशल	*45*
4-	1857 की क्रान्ति में दलित महिलाऐं	डॉ. नीता	*52*
5-	भारत में सामाजिक समरसता : चुनौतिया एवं समाधान	डॉ. एच.एम. बरूआ	*79*
6-	डॉ. अम्बेडकर – सामाजिक समरसता एवं संवैधानिक प्रावधान	डॉ. महेश कुमार परदेशी	*87*
7-	संत कबीर की वाणी में सामाजिक समरसता की चेतना	श्रीमती सोनी चौधरी	92
8-	गाँधी – अम्बेडकर की वैचारिक समरसता	डॉ. निवेदिता वर्मा	*100*
9-	वास्तव में आरक्षण किसको	प्रो. बाबूलाल चांवरिया	*104*
10-	भारतीय समाज में सामाजिक समरसता स्थापित करने हेतु समाज सुधारकों का योगदान– अजा.जजा के संदर्भ में	डॉ. दत्तात्रेय पालीवाल	*112*

इस अंक के लेखक

डॉ. आर. जी. सिंह– पूर्व आचार्य, 1/7, शिवानी काम्पलेक्स, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. पूरण सहगल– निदेशक–मालवा लोक सांस्कृतिक अनुष्ठान, मनासा, मालवा (म.प्र.)

डॉ. धमेन्द्र कौशल– एम.एस.–544, विश्व बैंक कालोनी, ढाँचा भवन, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. नीता– रीडर–इतिहास विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्ना. महाविद्यालय, लखनउ (उ.प्र.)

डॉ. एच.एम. बरूआ– पूर्व आचार्य, 137/1, देवभवन, सेठी नगर,उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. महेश कुमार परदेशी– 123, ब्रजेश्वरी एक्सटेंशन, पिपल्याहाना मेन रोड़, इन्दौर (म.प्र.)

श्रीमती सोनी चौधरी–ग्राम–चनकापुर, पोस्ट–जगदीशपुर, जिला–गोरखपुर,(उ.प्र.)

डॉ. निवेदिता वर्मा–शोध अधिकारी–डॉ. अम्बेडकर पीठ, वि.वि.विद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

प्रो. बाबूलाल चांवरिया– राजभवन, किला मार्ग, जुनी बागर, डॉ. अम्बेडकर पार्क, जोद्यपुर (राज.)

डॉ.दत्तात्रेय पालीवाल– रिसर्च ऐसोसिएट, आर.डी.गार्डी चिकित्सा महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 1–29 ***ISSN 0974 -1100***

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार : कारण और निदान

डॉ. रामगोपाल सिंह

भ्रष्टाचार समाज में कोई नई या अप्रत्याशित घटना नहीं है । किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार समाज में प्राचीन काल से चला आ रहा है । किन्तु आधुनिक काल में यह जितना व्यापक व चुनौतीपूर्ण हुआ है उतना पहले कभी नहीं था । आज कमोवेश दुनियाँ के सभी देश भ्रष्टाचार से पीड़ित हैं । यह बात अलग है कि कुछ गिने–चुने देशों ने अपने यहाँ इस पर काफी कुछ हद तक काबू पा लिया है किन्तु अधिकांश देश इस समस्या से बुरी तरह ग्रस्त हैं । जहाँ तक भारत का प्रश्न है तो कहा जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों में भ्रष्टाचार यहाँ अधिक व्यापक व घनीभूत हुआ है, जिसकी वजह से आज वह दुनियाँ के अतिभ्रष्ट देशों की श्रेणी में नहीं तो कम से कम अधिक भ्रष्ट देशों की श्रेणी में अवश्य शामिल हो गया है ।[1]

आजादी के समय देश में भ्रष्टाचार कोई बड़ी चुनौती नहीं था । लेकिन उसके बाद इसमें तेजी से विस्तार हुआ और तीसरे दशक के बीतते बीतते इसने एक बड़ी समस्या का रूप धारण कर लिया । इस संदर्भ में ए.एस. सूरी (1981:9) का अस्सी के दशक में यह कहना काबिले गौर है कि भारत में आजादी के बाद भ्रष्टाचार जंगल में आग की तरह पूरे समाज में फैलता जा रहा था और अब यह आकाश छू रहा है । समाज के सभी वर्ग चाहे उच्च हों या निम्न भ्रष्टाचार के कीचड़ में सने हुये हैं । संप्रति यह हमारी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर रहा है ।

नैतिक ताने–बाने, मूल्य और आदर्श व्यवस्था को बर्बाद कर रहा है तथा हमारे अच्छे भविष्य की संकल्पनाओं को झुठला रहा है । आज की स्थिति में तो भ्रष्टाचार एक संक्रामक रोग की तरह कमोवेश पूरे समाज में फैल गया है । यहाँ तक कि समाज में जनसेवा एवं आदर्श के प्रतीक समझे जाने वाले चिकित्सा, शिक्षा एवं न्याय जैसे विभाग भी अब इसकी गिरफ्त के बाहर नहीं हैं । तात्पर्य यह है कि देश के सामने यद्यपि आज कई महत्वपूर्ण समस्यायें तथा आंतरिक व बाह्य चुनौतियाँ हैं किन्तु भ्रष्टाचार से बड़ी समस्या और दुष्कर चुनौती कोई और नहीं है । वैसे आज की हालत में भ्रष्टाचार को एक सामाजिक समस्या या चुनौती कहना उसकी भयावहता व दुष्प्रभाव को कम करके आंकना है । आज की स्थिति में तो भ्रष्टाचार को देश में एक सामाजिक समस्या या सामाजिक बुराई की जगह एक सामाजिक आपदा या त्रासदी कहना कहीं अधिक मुनासिब होगा ।

भ्रष्टाचार एक बहुआयामी समस्या है आर्थिक आयाम पर भ्रष्टाचार अनएकाउन्टेड आदान–प्रदान, कालाधन, मिलावट, जमाखोरी आदि रूपों में एक अदृश्य व समानान्तर अर्थव्यवस्था के संचालन के माध्यम से देश में आर्थिक नियोजन को झुठलाता है और इस प्रकार आर्थिक प्रगति एवं विकास को अवरूद्ध करता है । साथ ही, नीचे से लेकर ऊपर तक अर्थात पंचायत से लेकर पार्लियामेन्ट और स्थानीय सरकार से लेकर राष्ट्रीय सरकार तक में अपनी घुसपैठ बनाकर यह राजनैतिक व प्रशासनिक निर्णयों को प्रभावित करता है । परिणामस्वरूप, समाज में अन्याय को बढ़ावा मिलता है । जिससे एक तो शासन की साख गिरती है और दूसरे, सरकार व लोकतांत्रिक राजनीति से आम जनता का विश्वास उठता है । जिसके चलते राजनीति व समाज में अनिश्चिता व अस्थिरता पैदा होती है और विकास की प्रक्रिया मन्द पड़ जाती है । पुलिस, प्रशासन एवं न्याय व्यवस्थाऐं जो भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने की सशक्त माध्यम समझी जाती है, जब स्वंय भ्रष्टाचार की गिरफ्त में आ जाती हैं तो समाज में न्याय, कानून एवं प्रशासन व्यवस्था के ठप्प पड़ जाने का खतरा पैदा हो जाता है । इनके अलावा शिक्षा, धर्म एवं नैतिकता के क्षेत्र में भ्रष्टाचार की परिव्यापकता के कारण भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ने के सामाजिकरण एवं सामाजिक नियंत्रण जैसे समाज के परंपरात्मक

साधन भी कमजोर व प्रभावहीन हो जाते हैं । साथ ही, समाज के आर्थिक, राजनैतिक, विधिक, शैक्षिक एवं न्यायिक आदि महत्वपूर्ण उपसंरचनाओं के भ्रष्टाचार ग्रस्त हो जाने से समाज में नियम कानून, आर्दश एवं मूल्य निष्प्रभावी हो जाते हैं । परिणामस्वरूप, समाज में नियमहीनता की स्थिति पैदा जो जाती है और समाज अव्यवस्था एवं विघटन का शिकार हो जाता है । इस प्रकार समाज के विभिन्न भागों को अपनी गिरफ्त में लेने के साथ भ्रष्टाचार आर्थिक, राजनैतिक, विधिक या न्यायिक समस्या की जगह एक चुनौतीपूर्ण सामाजिक समस्या बन जाता है ।

दरअसल, किसी समाज का अस्तित्व न्याय पर निर्भर होता है अगर समाज में लोगों को यह भरोसा होता है कि उन्हें न्याय मिलेगा और उनकी योग्यता व कार्योपलब्धि के आधार पर समाज में स्थान व पुरस्कार प्राप्त होगा तो समाज स्वाभाविक रूप से मजबूत होता है और जब समाज का न्यायिक आधार एवं समाज मजबूत होता है तो शिक्षा नई–नई खोजों को संभव बना कर लोगों को प्रगति के नये अवसर प्रदान करती है जिससे समाज की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है । किन्तु यदि शिक्षा भ्रष्टाचार के चलते व्याधिग्रस्त हो जाती है तो समाज की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है । तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचार, न्याय तथा कानून एवं प्रशासन व्यवस्थाओं को पंगु तथा शिक्षा व्यवस्था को व्याधिग्रस्त कर समाज को देरसबेर पतन व पराभव के गर्त में पहुँचा देता है ऐसा इसलिये क्योंकि अन्य समस्याओं की तुलना में भ्रष्टाचार समाज को अधिक कुप्रभावित करता है । क्योंकि अन्य समस्याऐं, उदाहरण के लिये निर्धनता, बेरोजगारी, मादक द्रव्यों का सेवन अथवा दहेज, बाल विवाह, विलम्ब विवाह, तलाक आदि सामान्यतया समाज के उस भाग को जो प्रत्यक्ष रूप से इनमें से किसी से सम्बन्धित होता है, को ही कुप्रभावित करती हैं । समाज को शेष भाग जो उससे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं होता है, उसके कुप्रभावों से बहुत कुछ बचा रहता है । इसके विपरीत भ्रष्टाचार से जहाँ समाज का अधिसंख्य भाग जो भ्रष्ट नहीं होता है सीधे कुप्रभावित होता है वहीं अन्य भाग जो भ्रष्ट होता है वह भी, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से ही सहीं, इसके कुप्रभावों से बच नहीं पाता है । उदाहरण के तौर पर मानलीजिये कि कोई कारखाने का मालिक है । वह टैक्स की चोरी व अन्य भ्रष्ट

तरीकों से पैसे इकट्ठा करता है । उसके इस कार्य की वजह से सरकार की आय कम जो जाती है, जिसके कारण विकास व जनकल्याण कार्यों में अवरोध आने से आम जन जो सामान्यता भ्रष्ट नहीं होता है के हित तो प्रत्यक्ष रूप से कुप्रभावित होते दिखते है जबकि भ्रष्टाचारी को कोई क्षति पहुँचती दिखाई नहीं देती है । किन्तु यह सच नहीं है । क्योंकि भ्रष्टाचार के चलते उसे कारखाना लगाने की अनुमति प्राप्त करने से लेकर कारखाना चलाते रहने के लिये ऊपर से लेकर नीचे तक बहुत से लोगों को खुश करना पड़ता है । वैसे कमोवेश समाज में हर व्यक्ति को कमोवश हर कार्य के लिये यहाँ तक कि, जैसा सुनने में आता है परिवाार में किसी सदस्य के जन्म या मृत्यु सम्बन्धी प्रामण–पत्र प्राप्त करने के लिये दौड़–धूप करने के अलावा पैसा भी खर्च करना पड़ता है, तो यह मानकर चला जा सकता है कि कारखाना व कारोबार चलाने जैसे बड़े कामों के लिये किसी को यह सब करना ही पड़ता होगा । भ्रष्टाचार के कारण समाज में लोगों को जो अनावश्यक भागदौड़ करनी पड़ती है, मानसिक किल्लत उठानी पड़ती है और समय व पैसे खर्च करने पड़ते है, इन सब को अगर जोड़ कर हिसाब लगाया जाये तो राष्ट्रीय स्तर परन समय व शक्ति की जितनी बर्बादी होती है उसे देखते हुवे तो यह कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार से व्यक्ति की प्रगति कम और राष्ट्र की प्रगति ज्यादा अवरूद्ध होती है । तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कमोवेश समाज के हर आदमी चाहे वह स्वंय भ्रष्ट नहीं हो या हो को तो आमतौर पर केवल व्यथित, परेशान व हलाकान ही करता है किन्तु समाज को तो बर्बादी व तबाही के मार्ग पर ले जाता है । अगर समाज बचा है तो आगे–पीछे व्यक्ति की रक्षा हो जाती है किन्तु अगर समाज बर्बाद व तबाह हो जाता है तो व्यक्ति की रक्षा कौन करेगा ?

ऐसा नहीं है कि देश में लोग भ्रष्टाचार के विरूद्ध जागरूक व कन्सर्न्ड नहीं है । विगत कुछ वर्षो के दौरान लोगों ने इसके विरूद्ध व्यापक प्रतिक्रिया व्यक्त की है और प्रदर्शनों व आन्दोलनों के माध्यम से भारी रोष प्रकट किया है । भ्रष्टाचार के चलते ही हाल के वर्षों में देश में दशकों से जमी सरकारे देखते–देखते जमींदोज हो गई और वर्षों से सत्ता में रहे कई जाने–माने नेताओं को चुनावों में

भारी पराजय का मुँह देखना पड़ा और कइयों को जेल की हवा भी खानी पड़ी । किन्तु इन सबके बावजूद हालात में कोई खास सुधार आता दिखाई नहीं पड़ता । कहने का तात्पर्य यह है कि हाल के दौर में भ्रष्टाचार के खिलाफ देश में हल्ला बहुत मचा, जीरो टालरेंस जैसे आश्वासन दिये गये और विदेशी बैंकों में जमा काला ध न लाने सहित भ्रष्टाचारियों कि विरूद्ध सख्त कार्यवाही किये जाने के दावे भी बहुत किये गये लेकिन कुल मिलाकर हालत तो अभी ढाक के तीन पात जैसे ही दिखते हैं । अगर स्थिति आगे भी ऐसी ही बनी रही तो लगता है कि व्यवस्था में मौलिक सुधार लाये बिना भ्रष्टाचार से निजात पाना, संभव नहीं होगा । वैसे भविष्य में क्या होगा इस सम्बन्ध में अभी कुछ कहना मुश्किल है किन्तु हाल के वर्षों में भ्रष्टाचार के विरूद्ध देश में व्यापक जन आक्रोश को देखते हुये इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार को लेकर सहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध भारतीयों की सहनशीलता का बाँध अब टूट रहा है जिससे इस बात की आशा अवश्य बंधी है कि निकट भविष्य में इस समस्या का कुछ न कुछ हल तो निकलना ही है ।

भ्रष्टाचार क्या है

भ्रष्टाचार प्रलोभन के माध्यम से व्यक्ति को सच्चाई, ईमानदारी व कर्तव्यपालन से विमुख करना अथवा जानबूझकर अनुचित साधनों को अपनाते हुवे व्यक्ति को अपने निर्धारित कर्तव्य का उल्लंघन करने तथा गैरवैधानिक कार्य करने के लिये प्रेरित करना है । अथवा घूस, पक्षपात व अन्य भ्रष्ट तरीकों के इस्तेमाल के द्वारा किसी व्यक्ति की सार्वजनिक कर्तव्य निर्वाह के प्रति निष्ठा व ईमानदारी को नष्ट करने का कार्य है ।[3] शाब्दिक तौर पर भ्रष्टाचार दो शब्दों से मिल कर बना है । जिसमें एक है भ्रष्ट और दूसरा है आचार (आचरण) । अतः शाब्दिक अर्थ में तो कहा जा सकता है कि सभी प्रकार के आचार या व्यवहार चाहे वे निजी, सामूहिक या सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित हों यदि भ्रष्ट की श्रेणी में आते हैं तो वे भ्रष्टाचार हैं किन्तु लौकिक प्रचलन के तहत सामान्यतया सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित भ्रष्ट आचरणों को ही भ्रष्टाचार के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है । दूसरे शब्दों में, भ्रष्टाचार सार्वजनिक जीवन में किसी व्यक्ति, सामान्यतया किसी

जनसेवक, द्वारा अपने लिये निर्धारित कर्तव्य या दायित्व से परे आचरण करना है । रही बात भ्रष्ट की अर्थात किस आचरण को भ्रष्ट की श्रेणी में रखा जाए तो कहा जा सकता है कि निजी लाभ की दृष्टि से व्यक्ति, सामान्यतया किसी जनसेवक द्वारा अपने कर्तव्य पथ पर सच्चाई, ईमानदारी व विश्वसनीयता से हट कर कार्य करना अथवा किसी व्यक्ति द्वारा जानबूझकर किसी व्यक्ति से नाजायज तरीके से अपने निर्धारित कर्तव्य का उल्लंघन कराना या उससे गैर कानूनी कार्य कराना भ्रष्ट आचरण की श्रेणी में आता है । अधिक स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि घूस अथवा पक्षपात के वशीभूत हो किसी व्यक्ति (सामान्यतया जनसेवक) का अपने सार्वजनिक कर्तव्य का सत्यनिष्ठा, ईमानदारी व विश्वनीयता के साथ निर्वहन नहीं करना अथवा अपने कर्तव्य के साथ बेइमानी करना भ्रष्टाचार है ।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यापक अर्थ में भ्रष्टाचार नागरिकों एवं जनसेवकों के ऐसे कार्यों को व्यक्त करता है जिससे सामाजिक व नैतिक आचार संहिता का उल्लंघन होता है । यदि कोई सामान्य व्यक्ति या नागरिक वैयक्तिक आधार पर सामाजिक या नैतिक आचार का उल्लंघन करता है तो उसे सामाजिक भ्रष्टाचार या सामाजिक अपराध कहा जा सकता है किन्तु इसे सार्वजनिक भ्रष्टाचार नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह जनसेवक की हैसियत किसी लाभवश नहीं किया गया है । दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि भ्रष्टाचार अपराध है किन्तु सभी अपराध भ्रष्टाचार अर्थात सार्वजनिक भ्रष्टाचार नहीं हैं । भ्रष्टाचार के अंतर्गत सामान्यता किसी सार्वजनिक पद पर आसीन किसी व्यक्ति के एसे व्यवहार को सम्मिलित किया जाता है जिससे वह पक्षपात या निजी लाभ हेतु अपनी वैधानिक शक्ति या अधिकार का दुरूपयोग करता है । उदाहरण के लिये नकली दवा व सामान बनाना और बेचना, निम्न स्तरीय सड़क व भवन का निर्माण करना, बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं का कृत्रिम अभाव पैदा करना, वेश्यावृत्ति करना या कराना आदि सामाजिक भ्रष्टाचार या अपराध या अधिकांशतया श्वेतवसन अपराध हैं लेकिन ये सार्वजनिक भ्रष्टाचार या सामान्य अर्थ या प्रस्तुत संदर्भ में भ्रष्टाचार नहीं हैं । किन्तु यदि कोई जनसेवक जिसे इस तरह के गैर सामाजिक या गैर कानूनी कार्यों को रोकने के लिये

नियुक्त किया गया है, यदि निजी स्वार्थ या लोभ के वशीभूत होकर इनकी अनदेखी करता है या इनके विरूद्ध कार्यवाही में नरमी बरतता है तो उसका यह आचरण निस्सन्देह भ्रष्टाचार की परिधि में आता है । उदाहरण के लिये यदि कोई पुलिस अधिकारी प्रलोभन में आकर वेश्यावृत्ति व अनैतिक कार्य व्यवहार, जुआ सट्टा, शराब तथा मादक द्रव्यों का गैरकानूनी कारोबार जानबूझ कर चलने देता है तो उसका यह आचरण भ्रष्टाचार की परिधि में आता है । इसी प्रकार निजी लाभ के वशीभूत होकर कोई खाद्य अधिकारी खाद्य सामग्री में मिलावट पाये जाने अथवा कोई नापतौल अधिकरी नापतौल में कमी पाये जाने के बावजूद सम्बन्धित व्यक्ति के इस गैरकानूनी कार्य के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं करता है तो वह भ्रष्टाचार का दोषी है ।

भारतीय दण्ड संहिता (अनुच्छेद 161) के अनुसार हम कह सकते हैं कि एक सार्वजनिक पद पर काम करते हुये यदि कोई जनसेवक (पब्लिक सर्वेन्ट) अपने कार्यालयीन कार्यकरण में किसी व्यक्ति से उसका या किसी अन्य व्यक्ति का पक्ष लेने या काम करने या सेवा करने या उसके इशारे पर किसी का सही या जायज पक्ष न लेने या काम न करने या सेवा न करने या नुकसान करने के उपलक्ष में अपने वैध पारिश्रमिक के अलावा अन्य किसी प्रकार का पुरस्कार, उपहार, लाभ या सेवा स्वीकार या प्राप्त करता है या स्वीकार करने पर सहमत होता है अथवा प्राप्त करने का प्रयास करता है तो उसका यह आचरण भ्रष्टाचार की परिधि में आता है (सिंह : 85:151–52) । संक्षेप में ऊपर की गई चर्चा के आधार पर हम कह सकते हैं कि भ्रष्टाचार निजी लाभ के लिये सार्वजनिक पद, सत्ता व अधिकार का दुरूपयोग है । अर्थात व्यक्तिगत हित की पूर्ति हेतु किसी जनसेवक के द्वारा अपने कार्यालयीन दायित्व के निर्वहन में व्यवसायिक व वैधानिक आचार संहिता का उल्लंघन है । रिपोर्ट आफ द कमेटी आन प्रिवेंशन आफ करप्शन (संथानम एवं अन्य, 1964:5) के अनुसार वृहद संदर्भ में भ्रष्टाचार के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा किसी सार्वजनिक पद पर रहते हुये या सार्वजनिक जीवन में कोई विशेष स्थान रखते हुये अनुचित लाभ या निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु अपनी शक्ति या प्रभाव के दुरूपयोग सम्बन्धी कार्यों को सम्मिलित किया जाता है ।

जहाँ तक भ्रष्टाचार के विरूद्ध प्रतिक्रिया का प्रश्न है, सामान्यतया देखने में आता है कि राजनेता, पुलिस, प्रशासन व सरकार भ्रष्टाचार को तब तक गंभीरता से नहीं लेते और उसके विरूद्ध सख्त कार्यवाही नहीं करते जब तक कि पानी सिर से ऊपर नहीं बहने लगता । हालांकि उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे किसी भी कीमत पर इसकी अनदेखी नहीं करें । किन्तु समाज भ्रष्टाचार को न तो कभी अच्छा समझता है और न ही इसकी अनदेखी करता है । भ्रष्टाचार के प्रति वृहद समाज का नजरिया हमेशा प्रतिकूल होता है और भ्रष्टचारी को वह सदा नीची नजर से देखता है । यह बात अलग है कि उसकी शक्ति और ताकत के भय से समाज में लोग खुलकर उसका विरोध न करे लेकिन देखने में आता है कि अवसर मिलते ही उसे उसकी करतूत का मजा चखाने से बाज भी नहीं आते ।

सार्वजनिक कार्यकरण में भ्रष्टाचार के सुगम क्षेत्र

देखने में आता है कि आजकल भ्रष्टाचार के कतिपय अधिक सामान्य स्वरूप को किसी हद तक शिष्टाचार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । अमूनन एक कारोबारी व्यक्ति के सरकारी दफ्तरों में आये दिन लाइसेंस, पर्मिट या वर्क आर्डर जारी कराने जैसे कई ऐसे काम पड़ते हैं जो जायज होते हैं और रूटीन में उन्हें हो भी जाना जाहिए लेकिन अगर ऐसा हो जाता है तो फिर सरकारी दफ्तर कैसा ? केन्द्र सरकार के दफ्तरों में तो काम काज कुछ ठीक ठाक हो जाता है लेकिन राज्य सरकार के कुछ विभागों को छोड़कर अधिकांश विभागों में सामान्य रूटीन में काम कराना ढेड़ी खीर है । राज्य सरकार की अर्द्धसरकारी संस्थाओं में काम करने वाले लोग बामुश्किल किसी केस की फाईल बनाते और पुटअप करते हैं । और फाईल पुटअप क्या हुई कि उस पर अड़गें लगने शुरू हो जाते हैं । जिससे फाईल पर निर्णय होने में देर लगती है । ऐसे में अपना काम कराने के लिये सम्बन्धित कारोबारी आदमी को दफ्तर के चक्कर लगाने पड़ते हैं । जिससे उसके अपने काम का नुक्सान होता है । इस सब झंझटों से बचने के लिये वह कार्यालय के सेवाकर्मियों को समय–समय पर चायपान कराने व आवभगत करने के अतिरिक्त तीज–त्योहार पर उपहार भेंट करता है । इससे उसका काम तो होता ही है, आगे के लिये गुडविल भी बनी

रहती है । सभी जानते हैं कि सरकारी दफ्तरों में सामान्यतया फाइल कछुए की चाल से भी नहीं चल पाती है लेकिन स्पीड मनी का तक्का लगते ही घोड़े की रफ्तार से भी तेज दौड़ने लगती है । वैसे दफ्तर के कर्मचारियों व अधिकारियों से अच्छा सम्बन्ध रखने से आदमी के काम न तो कभी रूकते हैं और न ही इनमें अनावश्यक विलम्ब होता है । साथ ही, किसी संभावित नीति या निर्णय के तहत यदि उसके हित को किसी प्रकार की क्षति पहुँचने की संभावना हुई तो इसकी उसे पूर्व सूचना भी मिल जाती है जिससे समय रहते वह उसकी कोई काट ढूंढने की कोशिश कर लेता है ।

ऐसा नहीं है कि लोगों को यह मालूम नहीं है कि सार्वजनिक जीवन में एक जनसेवक के लिये अपने निर्धारित कर्तव्य व दायित्व से हट कर गैरकानूनी काम करना और उससे इस प्रकार का काम कराना, दोनों भ्रष्टाचार के तहत कानूनन अपराध हैं जिसके लिये भारतीय दण्डसंहिता के अन्तर्गत सजा का प्रावधान है फिर भी देश में भ्रष्टाचार कमोवेश सभी विभागों में और सभी स्तरों पर धड़ल्ले से चल रहा है बहुत कुछ उसी तरह जिस तरह कि एक ओर हम वेद और उपनिषद के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता और मानव एकत्व की 'सोऽहम', 'तबमसि' तवा 'ईशावास्यं इदं सर्वय' की धोषणा करते रहे और दूसरी ओर व्यवहारिक जीवन में शास्त्रों व स्मृतियों के माध्यम से जात–पात और स्त्री–पुरूष के बीच जन्मगत आध ाार पर भेदभाव के रूप में इन्हें कठोरता पूर्वक नकारते रहे । तात्पर्य यह है कि पाख्ण्ड हम भारतीयों की नसों में कुछ इस तरह रच–बस गया है कि इससे उबर पाना हमारे लिये बहुत कठिन हो गया है । हम तिलक चन्दन लगाते हैं, साफ–पाक बनते हैं, सदाचार की बड़ी–बड़ी बातें करते हैं और मौका मिलते ही भ्रष्टाचार से बाज नहीं आते ।

आज देश में भ्रष्टाचार इतना व्यापक रूप से फैल गया है कि सार्वजनिक पदों पर काम करने वालों में कोई एक ऐसा जनसेवक ढूंढना जो कर्तव्यनिष्ट व इमानदार हो बहुत मुश्किल है । यह बात अलग है कि अधिकांश भ्रष्टाचारी सफेदपोश व साफ–पाक बने घूमते हैं उनमें ज्यादातर छोटे स्तर के ही होते हैं । तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचाररोधी जाल में सामान्यतया छोटी मछलियाँ ही फँसती

हैं । बड़ी मछलियाँ ताकतवर व चालाक होती है । जो भ्रष्टाचाररोधी जाल में नहीं फंसती हैं और अगर कही फँस भी गईं तो उन्हें पता होता है कि जाल में कहाँ छेद है जिससे निकला जा सकता है ।

वैसे तो भ्रष्टाचार सार्वजनिक जीवन के कमोवेश सभी क्षेत्र में पाया जाता है किन्तु कुछ क्षेत्र इसके लिये अधिक अनुकूल (कन्डूसिव) होते हैं अर्थात अधिक सहज व सुगत होते हैं । रिपोर्ट आफ द कमेटी आन प्रवेंशन ऑफ करप्शन (संथानम एवं अन्य, 1981 : 10) के अनुसार ऐसे संगठनों जहाँ करों का आकलन एवं संकलन, लाइसेंस देने की पात्रता का निश्चयन, लाइसेंस की स्वीकृति, ठेका दिये जाने की अनुमति तथा कार्य का अनुमोदन एवं आपूर्तियों की अभिस्वीकृति (एक्सेप्टेन्स ऑफ द सप्लाईज) दी जाती है, में भ्रष्टाचार के लिये क्षेत्र अधिक व्यापक और इनमें कार्यरत जनसेवको के भ्रष्ट बनने के प्रलोभन और अवसर अधिक होते हैं । सरकार के कुछ विभागों विशेष रूप से सार्वजनिक निर्माण, वन, कस्टम, आयकर, वाणिज्यकर, एक्साईज, राजस्व, पुलिस तथा रेलवे आदि में भ्रष्टाचार अधिक सामान्य रूप से पाया जाता है । इन विभागों की रूटीन गतिविधियों में रच बस जाने से भ्रष्टाचार इनमें बहुत कुछ इस प्रकार संस्थानिकृत हो गया है कि भले ही वह कानूनी रूप से मान्य नहीं हो किन्तु लोगों की नजरों में कमोवेश इस लिहाज से वैध मान लिया गया है कि उसके बिना काम होना ही नहीं है । इन विभागों के अलावा, जैसा कि पूर्व में कहा गया है अन्य विभाग यहां तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित सेना, जनसेवा कार्य को समर्पित चिकित्सा तथा स्वच्छ, पवित्र व नैतिक रूप से मजबूत समझे जाने वाले एवं परंपरात्मक रूप से समाज में आदर व सम्मान के पात्र माने जाने वाले न्याय एवं शिक्षा विभाग भी अब भ्रष्टाचार से अछूत नहीं रह गये हैं ।

भ्रष्टाचार के अधिक प्रचलित स्वरूप

सार्वजनिक कार्यकरण में भ्रष्टाचार का चलन कई रूपों में देखने को मिलता है । इनमें बख्शीश, सलामी, पेशगी, कमीशन, उपहार, भेंट, स्पीडमनी तथा हफ्ता एवं महावारी उद्यापन[4] एवं घूस[5] प्रमुख है । हरगोविन्द (1981 : 9) ने

भारतीय समाज में भ्रष्टाचार के प्रमुख प्रचलित स्वरूपों का उल्लेख किया है । जिनमें मुख्य ये हैं – (1) आदतन गैर कानूनी भेंट स्वीकार करना (2) बिना सोच विचार किये आदतन कीमती उपहार ग्रहण करना (3) बेइमानी अथवा धोखधड़ी से सम्पत्ति अर्जित करना (4) कीमती सामानों को प्राप्त करने के लिये अपने कार्यालयीन पद का दुरूपयोग करना (5) आय के स्रोतों की तुलना में बहुत अधिक अनुपात में सम्पत्ति अर्जित करना । इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रष्टाचार के अंतर्गत मुख्यतया आर्थिक लाभ चाहे वह नगद राशि अथवा अन्य किसी रूप में हो, सम्मिलित होता है । आर्थिक लाभ निस्सन्देह भ्रष्टाचार का प्रमुख उपादान (कम्पोनेन्ट) है किन्तु इसके अलावा कोई जनसेवक किसी अन्य प्रकार का लाभ प्राप्त करता है या अपनी किसी नाजायज इच्छा की सन्तुष्टि करता हे या भविष्य में इनकी आपूर्ति की संभावना को देखते हुये अथवा पूर्व में किसी के द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा या समर्थन के प्रतिदान स्वरूप जानबूझ कर अपनी शक्ति, अधिकार या विवेक का इस्तेमाल पक्षपातपूर्ण ढंग से अथवा भेदभाव के आधार पर सम्बन्धित व्यक्ति को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से, करता है तो समाज में उसका यह आचरण भी आर्थिक लाभ की भांति भ्रष्टाचार का ही अंग माना जाता है ।

भ्रष्टाचार के कारण

भ्रष्टाचार निवारण समिति ने भारतीय समाज में भ्रष्टाचार के कई कारणों का उल्लेख किया है । ये कारण है – (1) स्वतंत्रता पूर्व विश्वयुद्ध के दौरान आवश्यक वस्तुओं का अभाव एवं उनकी आपूर्ति पर नियंत्रण तथा युद्धोत्तर काल में मुद्रस्पीति के चलते जनसेवकों में कार्यनिष्ठा एवं प्रतिबद्धता के प्रति अस्वस्थ वातावरण निर्मित होना (2) आधुनिकिकरण विशेषरूप से आर्थिक आधुनिकिकरण की तेज रफ्तार के चलते पुरानी मूल्य व्यवस्था जिसमें मेहनत व इमानदारी की कमाई पर महत्व दिया जाता था, का कमजोर पड़ना (3) अनुभवी अंग्रेज अधिकारियों के जाने के बाद रिक्त पदों पर बिना योग्यता व कार्यनिष्ठा को पूरीतौर पर जांचे परखे कई गैरअनुभवी अधिकारियों को नियुक्त एवं पदोन्नत करना (4) विकास कार्यों को गति प्रदान करने के उद्देश्य से अधिकारियों के प्रशासनिक एवं विवेकाधीन शक्ति में वृद्धि की जाना (5) सरकारी दफ्तरों में कार्य

सम्पादन की जटिल व समय साध्य प्रणाली एवं प्रक्रिया के चलते स्पीड मनी की अवैधानिक रीति का विकसित होना और उसे बढ़ावा मिलना (6) भ्रष्ट जनसेवकों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही कियेजाने के प्रति उच्च अधिकारियों में अरूचि (या उदासीनता का भाव) तथा देश में जनसेवा (पब्लिक सर्विस) को अधिक संरक्षण प्रदान किया जाना (संथानम एवं अन्य 1981: 7–11) । किन्तु विगत तीन चार देशकों में देश की स्थिति में काफी बदलाव आया है । आज के समय में आमातौर पर लोग बढ़ती कीमतें, मुद्रस्पिती तथ जीवन यापन एवं बच्चों की शिक्षा का मंहगा होना, औद्योगिकरण, आधुनिकिकरण एवं वैश्वीकरण के चलते सुख–सुविधा के साधनों की बहुलता एवं सहज उपलब्धता और इनके प्रति लोगों में बढ़ती चाहत, आधुनिक शिक्षा और लोगों की प्रत्याशाओं में अप्रत्याशित वृद्धि, मीडिया, विज्ञापनों के चलते तड़क–भड़क व खर्चीली जीवन शैली की ओर लोगों में बढ़ता झुकाव, समाज में धन का बढ़ता महत्व और लोगों में धन के प्रति बढ़ती लिप्सा तथा दफ्तर एवं दफ्तर के बाहर जीवन के कमोवेश सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का माहौल और कानून की पकड़ से बचते हुवे आसानी से पैसा कमाने के गुर सीखने के अवसरों की सहज उपलब्धता को भ्रष्टाचार के आम चलन में आने के लिये उत्तरदायी मानते हैं ।

भ्रष्टाचार की विवेचना में लोगों के विचार समान नहीं है । कुछ लोग इसे कानून एवं प्रशासन की समस्या मानते हैं और समाज में इसके चलन के लिये कानून और प्रशासन व्यवस्था को उत्तदायी ठहराते हैं । जबकि कुछ अन्य इसे संसदीय प्रणाली की अपरिहार्य विवशता निरूपित करते हैं । इसी प्रकार कुछ लोग भ्रष्टाचार की विवेचना में आर्थिक पहलू पर जौर देते हैं । ये इसे उदारीकरण एवं पूंजीवादी व्यवस्था की उपज निरूपित करते हैं और महंगाई और अर्थलिप्सा को इसके लिये मुख्यरूप से उत्तरदायी ठहराते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ लोग लम्बे समय से समाज में भ्रष्टाचार के बने रहने के लिये न्यायप्रणाली में विद्यमान खामियों को दोषी ठहराते है । इनका मानना है कि ढीले–ढाले कानून, अभियोजन पक्ष की उदासीनता तथा लचर न्याय व्यवस्था के कारण अधिकांश प्रकरणों में भ्रष्टाचारियों को सजा नहीं मिल पाती जिससे उनके मंसूबे बढ़ जाते हैं । यदि

कानून सख्त हो, उसे लागू करने की शासन में दृढ़ ईच्छाशक्ति हो, अभियोजन पक्ष चुस्त–दुरस्त व नैतिक रूप से मजबूत हो और न्याय व्यवस्था सक्षम और विचाराधीन प्रकरणों को शीघ्र निपटाने के प्रति कृतसंकल्पित हो तो भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है । यद्यपि भ्रष्टाचार की विवेचना में ये सभी कारण महत्वपूर्ण है, किन्तु सामान्यतया ये भ्रष्टाचार के किसी विशिष्ट पक्ष पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं । इसके लिये अधिक से अधिक ये उनके तात्कालिक या आभासी कारण ही हो सकते हैं, मूल कारण नहीं । अगर ऐसा नहीं होता तो फिर क्या कारण है कि आजादी के बाद भ्रष्टाचार निवारण हेतु पारित अधिनियम, चुनाव सुधार, दल–बदल पर प्रतिबंध, सूचना के अधिकारी की अभिस्वीकृति तथा लोकायुक्त (लोकपाल) की नियुक्ति संबंधी प्रावधानों एवं आर्थिक क्षेत्र सहित कानून, प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में समय–समय पर लागू किये गये सुधारों के बावजूद समाज में भ्रष्टाचार समाप्त या सीमित होने की जगह बढ़ता ही गया है । इससे मोटेतौर पर दो बाते जाहिर होती हैं – एक तो यह कि मूल रूप से भ्रष्टाचार कोई सामाजिकेतर विषय नहीं है अपितु एक सामाजिक यथार्थ है और दूसरी यह कि भ्रष्टाचार की वास्तविक समझ प्राप्त करने के लिये इसके सर्वांगीण (न कि किसी विशिष्ट) पक्ष पर विचार किया जाना जरूरी है । कहने का तात्पर्य यह है कि एक सामाजिक यथार्थ के रूप में व्यक्ति, समाज व संस्कृति के सम्बन्धित फ्रेमवर्क में भ्रष्टाचार की अधिक सार्थक विवेचना की जा सकती है । क्योंकि व्यक्ति, समाज व संस्कृति सामाजिक यथार्थ के तीन परस्पर सम्बन्धित आयाम हैं जिनसे भ्रष्टाचार मूल जीवन–शक्ति एवं तेज ग्रहण करता है । अतः इनमें से किसी एक के आधार पर भ्रष्टाचार को सम्पूर्ण रूप में नहीं समझा जा सकता है ।

भ्रष्टाचार का वैयक्तिक आयाम

यह सही है कि भ्रष्टाचार करने वाला व्यक्ति होता है, भ्रष्टाचार कराने वाला भी व्यक्ति होता है और भ्रष्टाचार के विरूद्ध कार्यवाही करने वाला भी व्यक्ति ही होता है । अतः जाहिर है कि भ्रष्टाचार का केन्द्र व्यक्ति है । किन्तु वह उसमें संलिप्त तभी कहा जा सकता है जबकि किसी सार्वजनिक पद पर होने से उसके

पास कुछ शक्ति, सत्ता व अधिकार हो और वह मानसिक व नैतिक रूप से इतना सशक्त न हो कि इनका प्रयोग करते समय अपने सामने आने वाले प्रलोभनों से अपने को दूर रख सके । सामान्यतया व्यक्ति आर्थिक प्रलोभन और कभी–कभी किसी अन्य प्रलोभन के वशीभूत हो भ्रष्ट कार्य करता है किन्तु जन्म से वह भ्रष्ट नहीं होता है । समाज में पैदा होने के बाद ही वह भ्रष्ट होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचार शून्य में नहीं होता है और न ही शून्य में कोई भ्रष्टाचारी बनता है । भ्रष्टाचार समाज में होता है और समाज में ही कोई व्यक्ति भ्रष्टाचारी बनता है, किन्तु व्यक्ति और समाज दोनो मूलतः नियम, कानून, धर्म, आदर्श मूल्य व नैतिकता अर्थात संस्कृति द्वारा संचालित व नियंत्रित होते है । इसीलिये भले ही व्यक्ति भ्रष्टाचार का केन्द्र हो, फिर भी, उसके भ्रष्टाचारी बनने में समाज व संस्कृति की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है । क्योंकि व्यक्ति अच्छा या बुरा जो भी काम करता है वह उसके अपने तयी कम समाज व संस्कृति के अधिक तयी होता है । इसका अर्थ हुआ कि भ्रष्टाचार की विवेचना में वैयक्तिक आयाम की तुलना में सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम अधिक महत्वपूर्ण होते हैं ।

भ्रष्टाचार का सांस्कृतिक आयाम

समाज में हमारे आचरण बहुत हद तक सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक आदर्शों एवं नियमों से नियंत्रित होते हैं । व्यापक अर्थ में समाज, सांस्कृतिक मूल्यों, आदर्शों एवं नियमों से अनुशासित एक नैतिक व्यवस्था है । परम्परात्मक समाजों में नैतिकता धर्म प्रधान हुआ करती थी जबकि आधुनिक समाजों में विज्ञान सम्मत अर्थात तर्क व युक्तिप्रधान हो गई है । आधुनिक समाजों में वैज्ञानिक शिक्षा, आधुनिकिकरण एवं वैश्वीकरण के चलते परम्परात्मक नैतिक व्यवस्था कमजोर हो रही है । परम्परात्मक आदर्श व मूल्य तेजी से बदल रहे हैं । समाज भी तेजी से बदल रहा है । वह व्यक्तिवादिता, भौतिकता, आधुनिकता और वैश्विकता की और तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है । परितर्वतन के इस दौर में पुराने आदर्श एवं मूल्य कमजोर जरूर हुवे हैं किन्तु अभी गये नहीं है और नये आदर्श एवं मूल्य समाज में पूरीतौर पर स्थापित नहीं हुवे हैं । ऐसे में व्यक्ति आज नैतिक दुविधा की स्थिति में जी रहा है । दुविधा एवं अनिश्चितता की स्थिति में

उसके लिये ईमानदारी, सादगी और कठिन मेहनत की जिन्दगी जीने की जगह भ्रष्ट साधानों से पैसा कमाने ओर वैभवशाली व आरामदायक जिन्दगी जीने की ओर आकृष्ट होना स्वभाविक है । कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिक बल के कमजोर पड़ने की स्थिति में समाज में भ्रष्टाचार व असामाजिक कार्यों के चलन में आने की संभावना बढ़ जाती है ।

आज के समय में सामाजिक व नैतिक नियम, मूल्य एवं अवरोध लोगों पर कमोवेश नियंत्रण खो चुके है । जीवन में मितव्ययता, सादगी, न्याय एवं तपस्या जैसे परम्परात्मक मूल्यों पर भौतिकवादी एवं सुखवादी मूल्य हावी हो रहे हैं । पैसा, सुख, समृद्धि एवं वैभव ही आज जीवन का प्रमुख मापदण्ड बन गया है । इस बात का कोई अर्थ नहीं रह गया है कि उसे किस तरीके से कमाया जाता है । आज सफल जीवन की एकमात्र कसौटी शक्ति और सम्पदा है । आज किस तरीके से पद,सत्ता व शक्ति हांसिल करते हैं या किस प्रकार सम्पत्ति अर्जित करते हैं यह कोई नहीं पूछता है । लोग तो बस यह देखते हैं कि आपके पास क्या है ? जिसके पास पद, सत्ता, शक्ति व सम्पत्ति है उसे लोग चालाक, व्यवहारिक व सफल मानते हैं । उसकी प्रशंसा करते हैं और उसे सम्मान देते हैं । भले ही य प्रशंसा व सम्मान अन्तर्मन से नहीं बल्कि फौरी तौर पर दिखावे के लिये ही हो किन्तु दिखता तो वही है और कम से कम तब तक तो दिखता ही है जब तक कि उसका डंका बजता है । भले ही किसी के पास नैतिकता व इमानदारी है किन्तु यदि उसके पास सत्ता, शक्ति व सम्पदा नहीं है तो शायद ही कोई उसे पूछता है । क्योंकि एक तो नैतिकता व ईमानदारी, सत्ता व वैभव की तरह चमकदार नहीं होतीं, जिससे हर आदमी को दिखती नहीं और दूसरे, अन्तर्मन से भले ही लोग किसी को आदर व सम्मान दें लेकिन पूछ–परख तो उसी की होती है जिससे लोगों का काम पड़ता है या पड़ सकता है ।

आज भौतिकता, स्वार्थपरता तथा आर्थिक, मानसिकतावादी संस्कृति के चलते लोगों की कोशिश यही होती है कि वे सही या गलत किसी भी तरीके से सम्पत्ति अर्जित करें । साधनों की पवित्रता का आज शायद ही कोई अर्थ रह गया है । आज तो साध्य ही साधन का औचित्य निर्धारित करता है । सत्ता और शक्ति

से पैसा कमाना मुश्किल नहीं होती है और अगर पैसा पास में हो तो शक्ति और सत्ता हासिल करना कठिन नहीं होता है । और जब व्यक्ति के पास शक्ति और सम्पदा दोनों आ जाती है तो वह अपने लिये वह सब कुछ हांसिल कर लेता है जिनकी जीवन में उसे चाह होती है । जहाँ तक भ्रष्टाचार की बात है तो कहा जा सकता है कि इसका शक्ति एवं सम्पदा दोनों के साथ चोली–दामन का सम्बन्ध है । भ्रष्टाचार शक्ति एवं सम्पदा हासिल करने में सहायक होता है और शक्ति व सम्पदा होने पर व्यक्ति कानून की परवाह किये बिना भ्रष्टाचार क माध्यम से इनमें इजाफा करता है । और अगर ऐसा नहीं कर पाता है तो कम से कम इन्हें येनकेन प्रकारेण बनाये रखने की कोशिश करता है । क्योंकि सत्ता, शक्ति और सम्पदा सम्पन्न व्यक्ति का कानून शायद ही कुछ बिगाड़ पाता है ।

भ्रष्टाचार का सामाजिक आयाम

मूलरूप से भ्रष्टाचार एक उच्च एवं उच्च मध्यमवर्गीय घटना है । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उच्च एवं उच्च मध्यम वर्ग के सभी लोग भ्रष्ट होते हैं और माध्यम व निम्न वर्ग के लोग भ्रष्ट नहीं होते । इसका आशय केवल इतना है कि इस वर्ग के लोग भ्रष्टाचार नहीं करेंगे क्योंकि सम्पन्न होने की वजह से उनको ऐसा करने की जरूरत नहीं होती है यह मानना सही नहीं है क्योंकि इनमें बहुत से लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भ्रष्टाचार में संलिप्त होते हैं, यह एक सामाजिक सच है । भले ही यह कानूनी रूप से सच न हो अर्थात जरूरी नहीं है कि भ्रष्टाचार के मामले में पकड़े जाने वाले लोग उच्च या उच्च मध्यम वर्ग के ही हों । बरक्स देखने में तो यह आता है कि भ्रष्टाचार के ज्यादातर मामलों में निम्न वर्ग के ही कर्मचारी पकड़े जाते हैं और अधिकांश प्रकरणों में सजा भी इन्हें ही होती है । वैसे भ्रष्टाचार के मामलों में पकड़े जाने अथवा भ्रष्टाचार के प्रकरणों में दण्डित किये जाने को समाज में भ्रष्टाचार की वास्तविक स्थिति का द्योतक माना जाना जरूरी नहीं है । क्योंकि एक तो जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि उच्च वर्ग के लोग अपनी ताकत, पहुँच, नेटवर्क एवं पैसों की वजह से कानून की पकड़ से बच जाते हैं और दूसरे मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों की तुलना में उच्च व उच्च मध्यम वर्ग के लोग संख्या में कम होते हैं जिसकी वजह

से भ्रष्टाचार के प्रकरणों में उनका अनुपात कम होना बहुत स्वभविक है । तीसरे यह कि उच्च व उच्च मध्यम वर्ग के लोग अपनी हैसियत के मुताकिब बड़े लोगों से ही भ्रष्टाचार सम्बन्धी डील करते हैं, जो संख्या में बहुत सीमित होते हैं । इसलिये इनके मामले अधिकांशतया उजागर नहीं होते और अगर होते भी हैं तो आसानी से उजागर नहीं होते । इनके अलावा आमतौर पर उच्च वर्ग के लोग ही कानून बनाते हैं, इसलिये वे इसकी ढीलपोल जानते हैं और इससे बच कर निकलना भी जानते हैं । साथ ही, इस वर्ग के लोग चाहे वे सरकार, प्रशासन या पुलिस में हों, कानून को लागू भी करते हैं । इसलिये जरूरत पड़ने पर इनको मैनेज करने का तिकड़म भी जानते हैं ।

आर्थिक क्षेत्र के उच्चवर्गीय पूँजीपति, बड़े उद्यमी व व्यापारी, कानून बनाने वाले और कानून लागू करने वाले इन दो उच्च वर्गों के लोगों की अपनी जरूरत के अनुसार कमोवेश आर्थिक मदद करते है । ऐसा इसलिये क्योंकि वे यह भीलीभाँति जानते है कि हम सबके लिये शक्ति और सत्ता बरकरार रखने का मूल आधार भ्रष्टाचार है ओर एक दूसरे के सहयोग के बिना भ्रष्टाचार कर पाना और लम्बे समय तक करते रहना इनमें से किसी के लिये भी सम्भव नहीं है । इन तीनों उच्च वर्गों के अलावा एक वर्ग उन लोगों का भी है जो धर्म व समाज सेवा के क्षेत्र में अग्रणी होते हैं तथा व्यवस्था के साथ बेहतर ताल–मेल बिठाकर चलने की पर्याप्त सूझबूझ रखते हैं । ये जनहित में बनाये गये विधानों तथा सरकार व व्यवस्था की उपलब्धियों का बखान करते हुवे इन्हें धार्मिक एवं सामाजिक सम्बल प्रदान करते हैं । बदले में सरकार व प्रशासन में उच्च पदों पर आसिन लोग इन्हें यथासम्भव उपकृत करते हैं । ऊपर से तो इन सभी तथाकथित उच्च वर्ग के लोग आमजनों को नैतिकता, परहित व पर कल्याण के लिये काम करने का उपदेश देते हैं लेकिन जब बात इनके अपने निजी हित साधन की आती है तो अन्दर ही अन्दर नैतिकता का गला घोटने से बाज नहीं आते हैं । वैसे बहार से लोगों को दिखाने के लिये कभी–कभी ये एक–दूसरे की आलोचना भी करते है लेकिन इनमें से किसी के खिलाफ जब कठोर कार्यवाही करने की बात आती है तब ये कोई

न कोई बहाना बनाकर पीछे हट जाते हैं क्योंकि कि जानते है कि अन्दर से हम सभी काले हैं । आज अगर एक की गर्दन कानून की पकड़ में आती है तो कल दूसरे की गर्दन भी पकड़ में आ सकती है । जिसमें उनकी गर्दन भी हो सकती है ।

शक्ति और सत्ता, जैसा कि हमने पूर्व में विचार किया, भ्रष्टाचार के मुख्य स्रोत हैं शक्तिहीन व्यक्ति के पास ऐसा कुछ नहीं होता जिससे कि वह दूसरों का कुछ काम कर सके और प्रतिदान के रूप में उनसे उपहार, भेंट अथवा नगद का सेवा के रूप में कुछ ऐंठ सके । शक्ति का एक प्रमुख स्वरूप धन, सम्पदा एवं आर्थिक संसाधनों पर स्वामित्व है । कहते हैं कि जिसके पास धन, सम्पत्ति एवं आर्थिक संसाधन होते हैं उसके लिये सबकुछ सम्भव होता है । अपने अनुकूल कानून बनवाना अथवा जरूरत पड़ने पर कानून को धता बताना उसके लिये कोई मुश्किल काम नहीं होता है । इस दृष्टि से भ्रष्टाचार का एक प्रमुख स्रोत उच्च आर्थिक वर्ग है, जिसमें बड़े उधोगपति, कारखाना मालिक एवं बड़े व्यापारी आदि सम्मिलित होते हैं । इन्हें अपना उद्योग धन्धा, कारखना व कारोबार चलाने तथा नाना प्रकार के करों का हिसाब किताब अपने ढंग से निबटाने के लिये राजनेताओं व सरकारी अहलकारों से अच्छे संबंध रखने पड़ते है और उन्हें यथासंभव खुश करना पड़ता है । इनके बीच आपसी सौहार्द का आधार मूल तौर पर भ्रष्टाचार अर्थात ''इस हाथ दो और उस हाथ लो'' के सिद्धान्त का अनुपालन है । सीबीआई के पूर्व निदेशक जोगिन्दर सिंह (2014) ने देश के उद्योगपतियों के एक समूह से चर्चा के दौरान पूछा कि जब आप अपने धन्धे में सारे नियमों व निर्देशों का पालन करते हैं और अपना सब कारोबार नियम व कायदे से चलाते हैं तो फिर सरकारी अहलकारों को रिश्वत क्यों देते हैं । जवाब में उन्होंने उनको बताया कि हर महीने 65 इंसपेक्टर उनके कारखाने का मुआयना करने आते है । उनमें हरेक के पास कारखाना बन्द करने का अधिकार होता है । चैकिंक इंस्पेक्टर के शब्द ही कानून होते हैं । कोई अधिकारी उनके खिलाफ शिकायत नहीं सुनता है क्योंकि रिश्वत अकेले चैकिंग इंसपेक्टर ही नहीं खाता है बल्कि सब मिल बाँट कर खाते हैं । यह तो हुई कारखाना व उद्योग चलाने की बात लेकिन जब कोई

नया उद्योग स्थापित करना या करखना खोलना होता है तो उसके लिये उच्च स्तर पर राजनेताओं को ऊँची रिश्वत आमतौर पर बिचोलियों के माध्यम से देनी पड़ती है । इसके बिना उद्योग स्थापित करने या कारखाना लगाने की अनुमति प्राप्त करना आमतौर पर सम्भव नहीं होता है । मामला यहीं तक सीमित नहीं होता है । नीचे अधिकारियों व कर्मचारियों की भी आवभगत करना पड़ती है । अन्यथा फाईल टेढ़ी–मेढ़ी चलती है, अडंगे लगते हैं और अगर किसी तरह अनुमति मिल भी गई तो उसमें काफी समय लग जाता है ।

प्राचीन काल में धार्मिक व सामाजिक शक्तियाँ महत्वपूर्ण थी । कालान्तर में राजनैतिक शक्ति महत्वपूर्ण हो गई । यूं तो आधुनिक युग में आर्थिक शक्ति महत्वपूर्ण है किन्तु भारतीय संदर्भ में शिक्षा व जागरूकता की कमी, राष्ट्रीयता व नैतिकता का निम्न स्तर तथा सदियों की दासतापूर्ण जिंदगी बसर करने की वजह से सत्ता व अधिकार मिलते ही लोगों में रातों–रात सामन्ती व साहबी ठाट–बाट दिखाने एवं आमजनों पर रोब–दाब चलाये रखने व अधिकार व सत्ताविहीन होने की दशा में जी हजूरी व नजर न्यौछावर के माध्यम से काम कराने की मानसिकता के चलते समाज के अधिसंख्य लोग कुछ लोगों के हाथों शोषण व भ्रष्टाचार का शिकार बनने के लिये विवश हो जाते हैं । जिसके चलते व्यवहारिक रूप में राजनैतिक शक्ति अपने यहाँ अन्य शक्तियों के तुलना में अभी भी अधिक महत्वपूर्ण बनी हुई है । जिसकी वजह से यह भ्रष्टाचार की प्रमुख स्रोत भी है । ऐसा इसलिये क्योंकि राजनैतिक शक्ति व सत्ता के हाथ में आते ही आर्थिक व शैक्षिक हितों को साधना तथा समाज में उच्च स्थिति व प्रतिष्ठा हांसिल करना मुश्किल नहीं होता है । यही वजह है कि राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लिये लोग सामाजिक आधार तथा नैतिक आदर्शों की अवहेलना, कानून की अनदेखी व भ्रष्टाचार करने से नहीं चूकते हैं ।

संसदीय लोकतंत्र में राजनैतिक शक्ति एवं सत्ता प्राप्त करने का प्रमुख जरिया चुनाव है । राजनैतिक दल एवं नेता चुनाव के मद्देनजर उधोगपतियों से चन्दा एवं आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं । जिसके एवज में उधोगपति चुनाव के दौरान या उसके बाद उनसे अपने दस काम करवाते हैं ताकि चन्दा या सौहार्द

के नाम पर भेंट की गई राशि से कई गुना अधिक कमा सकें । चुनाव के दौरान राजनैतिक दलों व राजनेतओं द्वारा चुनाव आचार सहिंता का उल्लंघन करना आम बात है । क्योंकि वे जानते हैं कि इसे सिद्ध कर पाना और इस आधार पर उनके खिलाफ कोई कठोर कार्यवाही कर पाना किसी के लिये आसान नहीं है । ऐसा इसलिये क्योंकि एक तो सबूत गवाह ढूंढना मुश्किल होता है और दूसरे यह कि कार्यवाही करने वाले लोग भी सामान्य आदमी ही होते हैं । कोई असाधारण आदमी नहीं जिन्हें प्रेम–मोहब्बत, भेंट–उपहार और जरूरत पड़ने पर दबाव द्वारा झुकाया नहीं जा सके ।

राष्ट्रीय आन्दोलन की लीगेसी के चलते आजादी के बाद भी वर्षों तक राजनीति बहुत कुछ हद तक जनसेवा थी जिसमें लोग त्याग, तपस्या व सेवा की भावना से काम करते थे । लेकिन आगे चलकर यह एक लाभकारी व्यवसाय बन गयी । जिसके तहत राजनैताओं ने कानून बनाने सम्बन्धी अपने अधिकार का इस्तेमाल कर अपने लिये पेंशन व अनेक सुविधाओं की व्यवस्था कर ली । शुरू में यह सोचा गया था कि राजनेताओं को सुरक्षा मिल जाने से राजनैतिक भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेगा और राजनीति साफ–पाक हो जायेगी लेकिन हुआ इसके बिलकुल उल्टा । सुरक्षा मिल जाने से राजनैताओं को चुनाव में हारने की फिकर जाती रही । लिहाजा अपने कार्यकाल में उन्हें अपने हिसाब से काम करने की खुली आजादी मिल गई । जिसका नतीजा यह हुआ की राजनीति से भ्रष्टाचार समाप्त या कम होने की जगह बढ़ गया ।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सत्ता और शक्ति के संबंध में संसदीय लोकतंत्र के अन्तर्गत भ्रष्टाचार का सबसे अहम स्रोत राजनीति ही है । सत्ता में आने पर अधिकारी एवं कर्मचारी सहित आम जनता के लोग राजनैता से अपना काम करवाते हैं और राजनेता कोई दूध के धूले नहीं होते हैं और न ही बिना किसी स्वार्थ के सबका भला करने वाले संत महात्मा होते हैं । जिन्होंने चुनाव के दौरान या पूर्व में उनके काम किये थे और जिन्हें वे समझते हैं कि आगे भी उनके काम के रहेगें उन्हें पब्लिक एथारिटी के रूप में प्राप्त सत्ता का प्रयोग करते हुवे उपकृत करने में वे कोई संकोच नहीं करते और लोगों का काम करने के एवेज

में उनसे स्वंय या बिचौलियों के माध्यम से उपहार या भेंट स्वीकार करने में भी उन्हें कोई ऐतराज नहीं होता है । भले ही किन्ही प्रकरणों में उनके ऐसा करने से सम्बन्धित व्यक्ति से कहीं अधिक गुणवत्ता सम्पन्न व्यक्ति के हितों को आघात पहुँचता हो अथवा एक कमतर व्यक्ति के पदांकन से सार्वजनिक हित को क्षति पहुचती हो । सार्वजनिक जीवन में लाभ लेने और लाभ देने की यह प्रक्रिया यहीं नहीं थमती । 'महाजनों येन गता स पंथा' की तर्ज पर बड़े नेता को देखते हुवे अधिकारी, कर्मचारी व छुट भैया नेता भी जहाँ और जितनी गुंजाइश मिलती है, लोगों की सेवा करते रहते हैं और बदले में उनसे उपकृत होते रहते हैं । इस तरह समाज में जनसेवा के नाम पर भ्रष्टाचार का धन्धा ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक निर्बाध रूप से सतत चलता एवं फलता फूलता रहता है ।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में कहने को तो कानून का शासन होता है लेकिन कानून अपने आप में कुछ नहीं करता हैं । जनप्रतिनिधियों से बनी सरकार उन्हें लागू करती है और कानून व व्यवस्था बनाये रखने तथा सरकार के अन्य उद्देश्यों एवं कार्यों को मूर्तरूप देने का काम नौकरशाही करती है । हालांकि नौकारशाहीतंत्र की नकेल सरकार के ही हाथ में होती है किन्तु सरकार तो कुछ गिन–चुने मंत्रियों से ही बनी होती है जबकि नौकरशाहीतंत्र विशालकाय होता है । इसीलिये अगर यह कहा जाये कि कानून का शासन वस्तुतः नौकरशाहीतंत्र का शासन है तो कदाचित गलत नहीं होगा । वैसे भारत में सत्ता पर नौकरशाही की पकड़ अंग्रेजों के जमाने से ही मजबूत है । क्योंकि अंग्रेजी हुकूमत को भारत में बनाये रखने और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उद्देश्यों को पूरा करने में नौकरशाही अंग्रेज शासकों की सर्वाधिक विश्वसनीय सहगामी थी ।

अंग्रेजों के जाने के बाद जो लोग सत्ता के केन्द्र में आये उनमें अधिकांश इग्लैण्ड में पढ़–लिखे थे । वेशभूषा से भले ही वे भारतीय लगते थे और भारतीय समाज व संस्कृति की बाते भी करते थे लेकिन दिमागी तौर पर वे बहुत कुछ अंग्रेज ही थे । इसलिये अंग्रेजी राज्य में पली–पुसी नौकरशाही को उनसे पटरी बैठानी में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई । ऐसा इसलिये भी सम्भव हुआ क्योंकि तत्कालीन अन्य राजनेता अधिक पढ़े–लिखे, सक्षम व प्रभावी नहीं थे । जो थोड़े

बहुत थे वे भी सत्ता में नहीं बल्कि विरोध में थे और उन दिनों आजादी की लड़ाई में कांग्रेस की भूमिका को देखते हुवे लोग उनकी बाते सुनने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे । चूंकि तत्कालीन नेतृत्व को सत्ता व शासन सम्भालने का कोई खास अनुभव नहीं था इसलिये राज–काज चलाने के लिए उन्होंने विरासत में मिली नौकरशाही पर भरोसा किया और लोकतांत्रिक शासन के नाम पर उदारता बरतते हुवे नौकरशाहों को सेवा में अंग्रेजी शासन की तुलना में अधिक सुविधा व संरक्षण प्रदान किये । लोकतांत्रिक भारत में राजनैतिक दलों का शासन वस्तुतः नौकरशाही का ही शासन रहा है और नौकरशाही ने अंग्रेजी शासन काल में ही शासकों की जी–हुजूरी करने तथा जनता के काम लटकाने, उसमें गलतियाँ निकालने और उनसे सेवा, सलामी और पेशगी लेने में महारथ हांसिल कर ली थी ।

भारत में नौकरशाह, राजनेता और जनता के बीच ऐसा माध्यम है जो कहने को तों दोनों की सेवा करता है लेकिन हकीकत में दोनों को पाठ पढ़ा कर अपना मकसद सिद्ध करने की जुगाड में लगा रहता है । आज से करीब दो हजार या उससे कुछ साल पहले भारत में नौकरशाही के बारे में आचार्य कौटिल्य द्वारा व्यक्त किये गये विचार आज भी बहुत प्रासंगिक हैं । कौटिल्य (सद. झुनझुनावाला, 2006 : 8) का मानना था कि सरकारी कर्मचारी का भ्रष्ट होना एक सामान्य बात है जबकि उसका ईमानदारी बने रहना एक असामान्य बात है । उनके अनुसार जिस प्रकार जीभ पर लगे शहद का स्वाद न चखना असंभव है उसी प्रकार राज्य कर्मचारी द्वारा राजस्व का न हड़पना असम्भव है । जिस प्रकार यह पता करना कठिन है कि मछली पानी पी रही है या नहीं उसी प्रकार यह पता लगाना मुश्किल है कि सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट है या नहीं । ऐसे में इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि सभी सरकारी कर्मचारियों को भ्रष्ट मानना चाहिये और जासूसों के माध्यम से उनकी निगरानी की जानी चाहिए तथा उनकी रपट के आधार पर अगर वे भ्रष्ट पाये जाते हैं तो उन्हें सेवा से हटा देना चाहिये । संप्रति भारत में नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार की हालत का अनुमान आप यहाँ के एक पूर्व प्रधानमंत्री की इस स्वीकारोक्ति से लगा सकते हैं कि सरकार से आम जनता

के विकास के लिये खर्च किये गये एक रूपये का लाभ हितग्राही तक पहुँचते–पहुँते पन्द्रह पैसे रह जाता है । जबकि देश के आर्थिक नियोजन एवं विकास को आकार देने वाली आधारभूत संस्था प्लानिंग कमीशन का मानना रहा है कि हितग्राही तक पहुँचते–पहुँचते यह राशि पन्द्राह पैसे नहीं बल्कि केवल पाँच पैसे ही रह जाती है ।

भ्रष्टाचार का निदान

भ्रष्टाचार जैसा पूर्व में स्पष्ट किया गया है, बहुत कुछ मायने में एक उच्चवर्गीय घटना है । यह विशेषरूप से समाज के उच्च वर्ग जो आमतौर पर शिक्षित व आर्थिक रूप से सक्षम तथा शक्ति व अधिकार सम्पन्न होता है और बहुत कुछ जिसके कन्धे पर समाज व राष्ट्र की आधारभूत गतिविधियों के संचालन तथा प्रगति एवं विकास की जिम्मेदारी भी होती है, के अनैतिक असामाजिक व गैरकानूनी आचरण को व्यक्त करता है । इससे हमें यह पता चलता है कि राष्ट्र के संचालन तथा उसकी प्रगति एवं विकास का मुख्य दायित्व समाज के जिस भाग पर है वह नैतिक रूप से बीमार है और ठीके से काम नहीं कर रहा है । अतः राष्ट्र का भविष्य अंधकारमय है । इस संकट से राष्ट्र की रक्षा करना, चाहे यह उसके इस बीमार हिस्से की सर्जरी कर व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव अथवा इसका इलाज कर व्यवस्था में आंशिक सुधार लाने से संभव हो, जरूरी है । क्योंकि अगर भ्रष्टाचार इसी तरह निर्बाध रूप से फलता–फूलता रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा जबकि देश में मेहनत व ईमानदारी से काम करने वाले नहीं मिलेगें, जो मिलेगें वे सब कमोवेश भ्रष्ट व कामचोर होगें । ऐसे में राष्ट्र को पतन व पराभव से बचा पाना मुश्किल होगा । आप किसी भी क्षेत्र को लीजिए स्थिति यही होनी है । उदाहरण के लिये उच्च शिक्षा जो देश को दिशा तथा प्रगति व विकास के नये आयाम व अवसर प्रदान करती है को लिया जाए । आप देखेंग कि केन्द्र अगर भ्रष्ट व गैर जिम्मेदार है तो राज्यों मे उसके मंसबदा न केवल भ्रष्ट होगें बल्कि अपने आकाओं जो उन्हें तख्तेनशीन करते हैं, से कहीं अधिक भ्रष्ट व गैर जिम्मेदार होगें । ऐसे में केन्द्र व राज्यों के विश्वविद्यालयों में अक्षम व भ्रष्ट कुलपति नियुक्त होगें जो अक्षम व भ्रष्ट आचार्यों को नियुक्त करेंगे और वे अक्षम,

भ्रष्ट, चापलूस व जोड़–जुगाड़ युवाओं की फौज तैयार करेगें जो आगे चल कर राजनीति, न्याय, प्रशासन एवं पुलिस व सेना में जाकर देश की कैसी सेवा करेंगे और फिर देश का क्या भविष्य होगा इसका अनुमान आप स्वंय लगा सकते हैं । खुद के लिये अगर घरेलू नौकर या रोटी बनाने वाली रखनी होती है तो ये बड़े लोग उसके बारे में दुनियाँ भर की खबरें जुटाते हैं और काम पर रखने के बाद जरा सी गडबड़ हुई उसे बाहर का रास्ता दिखाने में देर नहीं करते । किन्तु किसी जिम्मेदार सार्वजनिक पद पर किसी को रखते समय न केवल पहले बल्कि बाद में भी केवल अपना मकसद देखते है न कि उसकी काबिलियत व कामकाज पर नजर रखते हैं । ऊँचे पदों पर बैठे हमारे राजनेता व प्रशासक भले ही आज अपने भ्रष्ट व गैर जिम्मेदार आचरण का फायदा व मजा उठा लें लेकिन यह न भूलें कि आगे जो पीड़ी इसका खामियाजा भुगतेगी उसमें उनके अपने लोग भी शामिल होगें ।

कुछ लोगों का मानना है कि भ्रष्टचार की जड़ें हमारे सार्वजनिक जीवन में इतनी गहरी पैठ गई हैं कि उन्हें सोवियत रूस व चीन की भांति क्रांति के माध्यम से व्यवस्था में अमूलचूल बदलाव लाये बिना उखाड़ फेंकना संभव नहीं है । निश्चित रूप से यह देश में भ्रष्टाचार के निदान की यह एक कारगर विधि हो सकती है । किन्तु एक तो यह एक स्थाई रूप से भ्रष्टाचार का उन्मूलन कर सकेगी यह कहना मुश्किल है । क्योंकि क्रांति के बाद कुछ समय तक भले ही इन देशों में भ्रष्टाचार पर नियंत्रण किया जा सका हो किन्तु अगर ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल द्वारा वर्कआउट किये गये करप्शन पर्सेप्शन इण्डेक्स' 2014 को भ्रष्टाचार के परिमाप का आधार माना जाए तो कहा जा सकता है कि इन देशों में भ्रष्टाचार की स्थिति भारत से बदतर ही है । दूसरे, इस विधि को अमल में लाने के लिये बड़े पैमाने पर हिंसा व बल का प्रयोग करना पड़ेगा जिसमें धनजन की भारी क्षति होगी और तीसरे, यह कि जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय में बँटे शोषण, अन्याय व भ्रष्टाचार से पीड़ित निम्न व कमजोर वर्ग के लोगों को शोषण, अन्याय व भ्रष्टाचार में लिप्त शक्ति एवं सत्तासम्पन्न उच्च वर्ग के विरूद्ध क्रांतिकारी संघर्ष के लिये एकजुट किया जा सकेगा इसकी दूर–दूर तक कोई सम्भावना

दिखाई नहीं देती है । ऐसे में भारत के लिये शांतिपूर्ण संवैधानिक तरीके से ही भ्रष्टाचार का निदान ढूंढना व्यवहारिक व उपयुक्त होगा । डेनमार्क, न्यूजीलैण्ड, स्वीडेन, नार्वे, स्वीटझरलैण्ड, आस्ट्रेलिया और किसी हद तक इंगलैंड व अमेरिका आदि देश शांतिपूर्ण वैधानिक मार्ग से ही इस समस्या से यदि पूरी तौर पर नहीं तो काफी हद तक निजात पाने में सफल रहे हैं तो हम भी ऐसा कर सकते हैं, बशर्ते कि पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ हम अपनी कमियों को ढूंढे और उन्हें दूर करने की कोशिश करें ।

भ्रष्टाचार की समस्या का वास्तविक निदान ढूंढ पाना तक तक संभव नहीं है जब तक की हम इसकी गइराई में जाकर यह पता नहीं लगा पाते कि इसकी मूल जड़ कहां है और वह कहां से खुराक ग्रहण करती है । इस दृष्टि से जाँच करने पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भ्रष्टाचार की जड़ में व्यक्ति है । व्यक्ति ही भ्रष्ट कार्य करता है और उसे भ्रष्ट कार्य करने के लिये प्रेरित, प्रलोभित व बाध्य करने वाला भी व्यक्ति ही होता है । इसलिये भ्रष्टाचार के निवारण हेतु जो भी प्रयास किया जाये वह व्यक्ति को ही केन्द्र में रख कर किया जाना चहिये ।

भ्रष्टाचार की समस्या के निवारण के लिये सबसे पहले तो प्रयास यह होना चाहिये कि समस्या उत्पन्न ही नही हो । इसके लिये कोशिश यह की जानी चाहिये कि व्यक्ति का सामाजिकरण इस प्रकार हो कि वह एक अच्छा व कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बने और बड़े से बड़े प्रलोभन को नजर अन्दाज करते हुये अपने नागरिक व व्यवसायिक आचार एवं कर्तव्य का ईमानदारी के साथ पालन करें । संक्षेप में, व्यक्ति का सामाजिक व नैतिक विकस इस प्रकार किया जाना चाहिये कि न तो वह स्वयं भ्रष्ट बने और न ही दूसरों को भ्रष्ट बनाने का प्रयास करें । इस कार्य में शिक्षा की आधारभूत भूमिका होती है । औपचारिक शिक्षा के साथ यदि व्यक्ति को सच्चाई, ईमानदारी, सादगी तथा अपनी मेहनत की कमाई पर भरोसा करने सम्बन्धी नैतिक मूल्यों की शिक्षा भी दी जाती है तो उसके व्यक्तित्व का सकारात्मक विकास होगा और उसके गैरसामाजिक व गैरकानूनी कार्यों की ओर जाने की संभावना कम होगी । इसके अलावा माता–पिता, शिक्षक, जननेता, समाजसेवी तथा संत–महात्माओं के जीवन से भी व्यक्ति सही मार्गदर्शन व प्रेरणा

प्राप्त कर सकता है । बशर्ते कि ये आदर्श एवं अनुकरणीय हों । विशेषरूप से आज के समय में व्यक्ति के चारित्रिक गठन तथा उसमें नैतिक एवं नागरिक मूल्यों के विकास में शिक्षा के अलावा मीडिया की भी महती भूमिका होती है । बशर्ते कि वह स्वस्थ्य एवं प्रभावकारी हो । इन बातों के अलावा व्यक्ति का आस–पड़ोस तथा उसके व्यवसायिक जीवन एवं कार्य स्थल का वातावरण स्वच्छ एवं प्रेरणादायी होना चाहिये जिससे उसमें नागरिकता, दायित्व बोध एवं राष्ट्रीय चरित्र का सही मायने में विकास हो सके जिससे कि भ्रष्टाचार जैसी बुराईयों के खिलाफ लड़ने में उसके मार्ग में जाति, साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय एवं भाषयी तत्व बाधक न बनें और वह इन व ऐसे अन्य आद्य (प्रायमॉडल) जुड़ावों से परे समाज के सुधारवादी लोगों को एकजुट कर भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्ष कर सके ।

समाज में अगर सब ईमानदार कर्तव्य परायण व नैतिक रूप से मजबूत हो जायें तो उसमें भ्रष्टाचार के लिये कोई गुजांइश ही नहीं रहेगी । किन्तु इस आदर्श अवस्था को प्राप्त कर पाना भारत जैसे विकासशील, बहुल व विशाल जनसंख्या वाले देश में जो अशिक्षा, निर्धनता और बेरोजगारी जैसी अनेक समस्याओं से लम्बे समय से जूझ रहा है, निकट भविष्य में संभव नहीं लगता है । ऐसे में भ्रष्टाचार को रोकने का सबसे कारगर व प्रभावी तरीका यही हो सकता है कि सार्वजनिक कार्यकरण में जहाँ तक सम्भव हो हम मानवीय तल को तकनालाजी से स्थानांतरित (रिप्लेस) कर दें । जब कार्यकरण में व्यक्ति तकनालाजी के द्वारा रिप्लेस (रूपातंरित) कर दिया जायेगा तो भ्रष्टाचार स्वतः समाप्त हो जायेगा । तात्पर्य यह है कि जब काम में हेरफेर करने वाला ही नहीं रहेगा तो काम में हेर–फेर कैसे हो पायेगा । जब काम करने के लिये आदमी की जगह मशीन रहेगी तो भ्रष्ट काम करने वालों की कुछ चलेगी ही नहीं । इस कार्य में सूचना प्रोद्योगिकी तकनीक बहुत कुछ कारगर सिद्ध हुई है । इस तकनिकी का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि यदि किसी स्तर पर कार्य में विलम्ब या गड़बड़ी होती है तो वह पकड़ में आ जाती है । संप्रति रेलवे टिकट एवं भूअभिलेख प्राप्त करने तथा पासपोर्ट आवेदन एवं एफआईआर दर्ज कराने जैसे प्रकरणों में ऑनलाईन सुविधा हो जाने से नागरिकों को जहाँ अनावश्यक भाग–दौड़ से राहत मिली है वहीं इन क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की संभावना भी कम हुई है ।

भ्रष्टाचार के निवारण के बारे में कहने को लोग बड़ी–बड़ी बातें और दावे करे लेकिन आज की हकीकत को देखते हुवे तो यही लगता है कि निकट भविष्य में सारे लोक सेवक न तो ईमानदार व कर्तव्य परायण बन सकते हैं और न ही इन सब को तकनालाजी द्वारा स्थापित किया जा सकता हैं । ऐसे में भ्रष्टाचार को रोकने के लिये सार्वजनिक कार्यकरण में तकनालाजी के अधिकाधिक प्रयोग के साथ जो अन्य प्रभावकारी कदम उठाये जा सकते है उनमें राष्ट्रपति शासन प्रणाली का अपनाया जाना, राजनेताओं को मिलने वाली पेन्शन व अन्य सुविधाओं को समाप्त या परिसिमित किया जाना तथा कार्यकरण में अकाउन्टेबिलिटी सुनिश्चित करना, भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम (1988) में भ्रष्टाचार के विरूद्ध कड़ी सजा का प्रावधान करते हुवे उसे अधिक मजबूत बनाना, पुलिस तथा कानून एवं प्रशासन व्यवस्था को अधिक चुस्त–दुरूस्त करना, न्याय व्यवस्था को अधिक सक्षम प्रभावी बनाना तथा चुनाव अयोग, सीबीआई, सीएजी, ईओडब्ल्यू एवं लोकायुक्त व लोकपाल जैसी संस्थाओं को सरकारी संरक्षण से मुक्त कर अधिक स्वायत्त, सक्षम व मजबूत बनाना मुख्य हैं । हालांकि विगत कुछ वर्षों से देखने में तो यही आता है कि राजनीति सहित सार्वजनिक सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में गाव से लेकर दिल्ली तक भ्रष्टाचारियों के होंसले बुलन्द हुवे हैं । लगता है कि वे ऐसा मानकर चल रहें हैं कि सबकुछ उनके हाथ में हैं और कोई उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता ।

जब विधान हो अपने हाथ में
हाकिम हो अपने साथ में
मुंसफ फँसा हो कानून
सबूत और गवाह की फांस में ।
खाओ मिल बाँट के ।।
न करो राज्य की कोई फिकर
न करो न्याय की कोई परवाह,
बाहर से भले लड़ते रहो
पर, भीतर से रहो साथ में ।
खाओ मिल बाँट के ।।
बोलो रूपचन्द की जय

बोलो धर्मचन्द की जय
बोलो संसदीय तंत्र की जय
बोलो कर्मतंत्र की जय
बोलो भ्रष्टतंत्र की जय।।

भ्रष्टाचारियों के बढ़े हौंसलों को देख कर निराश होने की जरूरत नहीं है क्योंकि विगत एक दो वर्षों के दौरान एक अच्छी बात यह देखने में आई है कि कमोवेश पूरा देश भ्रष्टाचार के खिलाफ अब खड़ा हो रहा है । सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ सामान्यजन एवं मीडियाकर्मी भ्रष्टाचार के विरूद्ध लड़ाई में संघर्ष कर रहे हैं और यहाँ तक कि अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं । ऐसे में अगर सार्वजनिक कार्यकरण में तकनालाजी को बढ़ावा देने के साथ उपर्युक्त निवारणात्मक, निरोधात्मक एवं दण्डात्मक उपायों को अपनाया जाता है तो निस्सन्दहे भ्रष्टाचारियों के बढ़े मंसूबों को पूरी तरह नाकाम किया जा सकता है ।

टिप्पणियाँ

1. ट्रांसपरेन्सी इन्टरनेशनल ने 2014 में दुनिया के 175 देशों में किये गये सर्वेक्षण के आधार पर करप्शन पर्सेप्शन इण्डेक्स की गणना के माध्यम से पाया कि 100 (अतिस्वच्छ) से 0 : शून्य (अतिभ्रष्ट) के स्केल पर कोई भी देश 100 अंको के साथ पूर्णतया स्वच्छ (या भ्रष्टाचार मुक्त) नहीं है । और दो तिहाई से अधिक देशों का स्कोर 50 से कम है । इस पैमाने पर 92 के स्कोर के साथ डेनमार्क सबसे कम भ्रष्ट देश है । इसके बाद 91 के स्कोर के साथ न्यूजीलैण्ड का नम्बर सबसे कम भ्रष्ट देशों की श्रेणी में आता है । जबकि 08 के स्कोर के साथ नार्थ कोरिया एवं सोमालिया क्रमशः 174 वाँ एव 175 वाँ स्थान प्राप्त कर सर्वाधिक भ्रष्ट देश है और 38 के स्कोर के साथ भारत 85 वें स्थान पर है ।
2. वेबेस्टर न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी, स्प्रिंग फील्ड एण्ड सी. मेरिअन कम्पनी 1948 ।
3. आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी (अंक–2) आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1933 ।
4. उद्यापन किसी जनसेवक द्वारा किसी व्यक्ति से ऐसी धमकी के माध्यम से कि यदि वह उसके द्वारा मांगी गई राशि का साप्ताहिक या माहवारी आधार पर भुगतान नहीं करेगा तो वह अपने कार्य क्षेत्र में अपने अधिकार एवं प्रयोग के

माध्यम से उसका नाजायज धन्धा चलने नहीं देगा । जैसे किसी क्षेत्र में जुआ, सट्टा, वैश्यावृत्ति आदि चलने देने अथवा निर्धारित समय के बाद भी कलारी खुली रहने देने या निर्धारित मापदण्ड से कमतर मापदण्ड पर भी पेट्रोल पम्प को बिना रोक–टोक चलने देने के उपलक्ष में सम्बन्धित धन्धे वालों से साप्ताहिक या महावारी आधार पर तय राशि की गैर कानूनी उगाही करना ।

5. घूस वह राशि (वस्तु या सेवा) है जो कोई व्यक्ति अथवा किसी संस्था या संगठन का प्रतिनिधि अपना काम कराने के लिये किसी जनसेवक को देता है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *हरगोविन्द, करप्शन पब्लिक एण्ड प्रायवेट द हिन्दुस्तान टाईम्स वीकली, 8 जनवरी, 1981 पृ. 9*
2. *आर.के. जैन, मोरेलिटी इन थियरी एण्ड प्रैक्टिस अन पब्लिस्ड पेपर, द एल.के. अनन्तकृष्ण बर्थ सेन्टेनरी (1977–78) लेक्त्रर्स डेलिवर्ड एट द युनिवर्सिटी ऑफ मद्रास, 27 मार्च 1979*
3. *झुनझुनवाला, कौटिल्य के नकारात्मक सुझावों पर अमल न हो, राज एक्सप्रेस, 25 मार्च, 2006 पृ. 8*
4. *के. संथानम एवं अन्य, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन प्रिवेंशन ऑफ करप्शन, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेअर्स, गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, नईदिल्ली, 1981*
5. *जोगिन्दर सिंह, फाईलों के नीचे दम तोड़ती व्यवस्था, दैनिक भास्कर, 23 जनवरी, 2014*
6. *आर.जी. सिंह, सोशियोंलाजी ऑफ वायलेंस, जैन्सन्स पब्लिकेशन, नईदिल्ली, 1985*
7. *एस.एस.सूरी, नोट्स आन हरगोविन्दस अर्टिकल, करप्शन पब्लिक एण्ड प्रायवेट, हिन्दुस्तान टाईम्स, 25 जनवरी, 1981 पृ. 9*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 30–44 ***ISSN 0974 -1100***

अन्याय और अनाचार के विरूद्ध विद्रोही लोक नायक और नायिकाओं की शौर्य गाथाऐं

डॉ. पूरन सहगल

भारत अनेक जातियों, धर्मों, वर्ग समुदायों और सम्प्रदायों का देश है । इसकी सामाजिक संस्कृति विश्व में समानता, सद्भाव एवं सह–अस्तित्व का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । जो लोग नगरों में रहते हैं वे नगरवासी कहलाते है । जो गाँवों में बसते हैं वे ग्रामीण अथवा ग्रामवासी कहलाते हैं तथा गिरी कानन में बसते हैं वे गिरीजन और वनवाासी कहलाते हैं । इसी समदुाय को जनजाति भी कहा जाता है । इसी समुदाय को हम आदिवासी समुदाय भी कहते हैं ।

आदिवासी या वनवासी समुदाय सरल, निष्छल एवं निस्वार्थ भाव वाला होता है । जब तक उसके अहम पर आघात नहीं लगता तब तक वह शाँत बना रहता है । भील समुदाय की जितनी भी कथा–गाथा हमें पढ़ने, सुनने को मिलती हैं वे सभी इस सत्य के साक्ष्य–प्रमाण हैं ।

आदिवासी लोक संस्कृति और साहित्य आज भी अधिकतर वाचिक परम्परा में कंठानुकंठ सुरक्षित है । लोक साहित्य ही संस्कृति का प्रवक्ता होता है । किसी भी समुदाय की सामाजिक गतिविधियाँ, आचार–विचार, रहन–सहन, भाषा–भूषा आदि सब उसके लोक साहित्य से ज्ञात हो जाती है ।

वनवासी समुदाय मूलतः संघर्षशील समुदाय है । वन का कठोर, जीवन, अभाव, गरीबी, शोषण, बेगारी जैसी अनेक समस्याऐं उसके जीवन को विचलित

करती रहती है । इतने पर भी व धैर्य नहीं खोता । गरीबी और अभाव उसके स्वभाव में शामिल हो जाते हैं । वह किसी भी परिस्थिति में निराश नहीं होता ।

आदिवासी या वनवासी समुदाय के प्रति अनेक भ्राँत धारणाएँ लोक में प्रचलित हैं । उनका कारण है इस धैर्यशील और सहिष्णु समाज की संस्कृति से परिचित न होना ।

सागर शांत भी होता है और अशांत भी । भील सहनशीलन होता है तो बहुत सहनशील होता है किन्तु जब उसकी अस्मता पर आघात लगता है तब वह प्रयलकंर बन जाता है।

वनवासी समुदाय भले वह गुजरात का हो, राजस्थान का हो, मध्यप्रदेश का हो, महाराष्ट्र का हो अथवा, असम, बंगाल, केरल, उड़िसा, आँध्र या मद्रास का हो उनकी भाषा भिन्न हो सकती है । भाव सदा एक समान रहते हैं ।

राजस्थान की एक वनवासी लोक कथा है एवं ''केवल्या'' भील की पत्नी जंगल में गाएँ चरा रही थी । पास के गाँव वाले कुछ लोगों ने उसका अपहरण कर लिया । केवल्या को गरीबी तो बर्दाश्त थी किन्तु उसकी इज्जल छिन जाऐ इसे केवल्या या कोई भी भील नहीं बर्दाश्त कर सकता ।

धाडूं तैयार करो होरे देखों म्हारी ढालड़ी रमें ।

मोटियांरा ना धाड़ा हे रे म्हारी ढालड़ी रमें ।

हरकी रे जोड़ी ना है रे म्हारी ढालड़ी रमें

सोरे सांगी दियो है रे म्हारी ढालड़ी रमे ।

ढालां ने तरवारां है रे म्हारी ढालड़ी रमे ।

ते धाडूं दौडे है रे म्हारी ढालड़ी रमे । (2)

केवल्या के गाँव वाले एकत्र हो गए । धाड़ा तैयार हुआ । जवानो ने हथियार सम्भाले । छोटे लड़कों ने वारी ढोल बजाया । और इज्जत लौटाने और इज्जत पर हाथ डालने का प्रतिशोध लेने के लिए सभी तैयार हो गए । सत्ता भी

अगर अन्याय करें तो भील विद्रोह करने से नहीं चुकता । वनवासी समाज में अन्याय और शोषण के विरूद्ध सदा विद्रोह करने में तत्परता दिखाई है । ऐसी अनेक गीत–गाथाऐं, वात–वार्ताऐं वनवासी लोक साहित्य में आज भी कंठानुकंठ जीवित है ।

मध्यप्रदेश में पश्चिमी मालवा जिसे 'दशपुर जनपद' कहा जाता है । इस अंचल का विस्तार अरावली पठार पर मेवाड़ के कनेरा से लगाकर हाड़ौती, झालावाड़ के गागरोन गढ़ तक है । मालवा का यह भाग 13 वीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक भील समुदाय का सत्ता क्षेत्र रहा है । यह क्षेत्र मूलतः वनवासी बहुल आबादी का क्षेत्र रहा है ।

आज भी अरावली पठार पर भील समुदाय के लगभग एक सौ गाँव खेड़े आबाद है । 15 वीं शताब्दी में चित्तौड़ से निष्कासित चन्द्रावतों ने इनसे सत्ता छीनी और इन्हें निष्प्रभावित कर दिया । चन्द्रावतों के बाद अनेक अन्य खापों के राजपूतों ने भी अपना प्रभाव इस अंचल पर स्थापित किया । फलस्वरूप आज यह वनवासी समुदाय अपने भरण–पोषण के भी योग्य नहीं रहा ।

इस अंचल में भील सत्ता के प्रभाव को ''भील ठिकाणा'' की विरद गाथा में भील झलक्या भाट ने बखाना है । (2) झलक्या अपनी गाथा में कहता है –

''आड़ा अवला ठेठ तलक, ज्याँ देखूँ त्याँ भील ।

भील जात घण भौलकी, मूं भीलां को भील ।। 2 ।।

तीर कामठो कांधे राखे, पाँच कोस को मील ।

खींच झपट्टो ऐसा मारे, ज्यूँ ऊँदर पे चील ।। 13 ।। तथा

आड़ा औला ठेठ तई, भीलां को ई राज ।

कीर, भीर, मीना, मुरा, सबै निसाना बाज ।। 39 ।।

संकोदारो, केदारों, आंतरी, आमद, अन सुखदाम ।

संकर्यों, बुज, रांपरो, भानपर, सालर मालो गाम ।। 40 ।।

खास ठिकाना है भीलां का, ई दस तीरथ धाम ।

छोटा ग्राम हजारणा, मोटा छप्पन नाम ।। 41 ।। (3)

धीरे–धीरे इस अंचल से भील सत्ता समाप्त हुई और भील समुदाय निष्क्रिय और निराश्रित अवस्था में होता चला गया । भीलों की इस दशा का वर्णन गाथा के अंत में झलक्या भील भाट करता हुआ कहता है ।

''कट गया भील, तुरकड़ा कट गया ।

बच्या भील, मगरा पे हट गया ।। 105 ।।

वेतां–वेतां राज बदल गयो ।

भीलां का सब काज बदल गयो ।। 106 ।।

रह्यो ठिकाणादार न कोई ।

बण्या बापड़ा धणि न कोई ।। 107 ।। (4)

अपने सत्ताकाल में तथा बाद में कई वर्षों तक भी अनेक वीर–वीरागंनाएँ इस अंचल में हुई । जिन्होंने स्वयं की तथा अन्य नारियों की अस्मत बचाने के लिए युद्ध किया । आतताईयों के छक्के छुड़ाए और उन्हें सामुख्य युद्ध में पराजित किया । इन वीरांगनाओं में हिंगलाजगढ़ की ताखली, बुधली, केतकी और जलकी का नाम बड़े सम्मान के साथ यहाँ के वनवासी समाज में लिया जाता है । इन वीरांगनाओं ने स्वयं के सतीत्व एवं अन्य सतवंतियों और अबलाओं की रक्षा के विरूद्ध युद्ध किया और आतताई को मार कर स्वयं भी जुझार हो गई । जालकी रामपुरा के रामा भील की बेटी थी । रामा भील रामपुरा राज्य का राजा था । चन्द्रावत राजपूतों के आक्रमण के समय जालकी ने चन्द्रावत हमलावरों का डटकर मुकाबला किया और लड़ते–लड़ते शहीद हो गई । जहाँ उसका शरीर कट कर गिरा था । रामपुरा में उस स्थान पर मंदिर बनाया गया । नानी चाहटी का यह मंदिर जालकी की शहादत की यशगाथा बखनता हुआ आज भी चामुंडा के जीवति स्मारक रूप में विद्यमान हैं । ऐसे अनेक स्थल इस अंचल में मौजूद हैं जो उन भील वीरांगनाओं के जुझारूपन की यश गाथाएँ बखानते हुए पूजा स्थल और तीर्थ स्थल हैं । (5)

जालकी के युद्ध कौशल का बखान झलक्या भाट ने किया है –

'जालकी भई जालकी रामा भील की बालकी ।

मांडव साह की सेना काटी, ज्युँ. रागस पे कालकी ।। 94 ।।

खड़ी मुंडेरा, चोड़े–चोड़े बाण चलावे, हेलो पाड़े ।

भीलड़ियाँ की सेना साथे, मूंड उड़ावे, कारजो काढ़े ।। 95 ।।

कूद पड़ी मुंडेर ती रेटां, जै अंबा की हांक लगावे ।

खडग् साथ में लियाँ कालकी, दोनोई हाथाँ खड़ग चलावे ।। 96 ।।

खूनाझार वई–गई जालकी, मार–काट दुश्मण ढकरावे ।

जो भी सामें पड़े रांगड़ो, जीवत्यों पाछे नी जावे ।। 97 ।।

सीस कट्यों ने ढबी भवानी ।

धारां लागी भीलण मरदानी ।। 98 ।। (6)

न्हार पड़े रामा के हामें, डट नी पावे पूँछ दबावे ।। 102 ।। (7)

भील वीरांगनाओं की ही भाँति भील वीरों की जुझारू लोक गाथाएँ इस अचंल में खूब बखानी जाती है । इनमें कटारा, रगत्या, सीकरिया, बुजारिया, जालोरिया तथा रामा भील का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । रामा ने चन्द्रावत राजपूतों से डटकर मुकाबला किया और अन्त में वीरगति को प्राप्त हो गया । रामा भील के विषय में गाथाकार कहता है –

रामो भील, भई रामो भील ।

जब्बर जंगी जण को डील ।। 99 ।।

संपरा को राजो वाजे ।

भानपुरा तई रण में गाजे ।। 100 ।।

बजर चलावे, बाण चलावे, खड़ग चलावे दुश्मन घाती ।

टूट पड़े दुश्मन पे रामों, डट ने लड़े उघाड़ी छाती ।। 101 ।।

एक वार ती पाड़ो काटे, अज गरदन पे वार लगावे ।

न्हार पड़े रामा के हामें, डट नी पावे पूँछ दबावे ।। 102 ।। (7)

दशपुर अंचल का यह भाग वनवासी भील वीरांगनाओं और वीर जुझारों का यशस्वी अंचल रहा है ।

पश्चिमी नीमाड़ का टण्ट्या भील आज तो पूरे देश में चर्चित हो चुका है । टण्ट्या का विद्रोह तत्कालिन सामंतों, साहुकारों, पाटिलों–पटेलों और अंग्रेज प्रशासन के विरूद्ध था । अपनी उम्र के 11 वे वर्ष में ही उसने भी वनवासियों का युवादल गठित कर लिया था । उसके सामने उसकी माँ की इज्जत लूटने का प्रयास हुआ । उसकी माँ पाटिल के जालिम साथियों आतंकियों से जूझती हुई बीच चौराहे मार डाली गई । उसका बाप निर्दयता मारा गया । उसने अपने फलियों की बहुबेटियों की इज्जत लूटते देखी थी । उसने अपने फलियों के वनवासियों को सामंत पाटिलों की बेकार करते देखा था । मना करने पर फलियों को जल कर राख होते देखा था । वनवासियों के खेतों पर सामंत–साहुकारों को जबरन अधिकार करते देखा था । सामंतो–साहुकारों के इस जोर जुल्म ने उसे बागी बना दिया । वह टुण्डरा से टण्ट्या बन गया । टण्ट्या अर्थात टण्टा करने वाला । (8)

नीमाड़ के वनवासी अंचल में टण्ट्या भील के यश बखान सम्बन्धी पर्याप्त लोक साहित्य प्राप्त हुआ है । जिसमें –

(1) गाथा टण्ट्या देवत की
(2) वारता टण्ट्या भील अण पोमल भीलणी की
(3) वात टण्ट्या मामा की
(4) पोमली बोल रई छे ललकार
(5) बोलो काई करनो छे मरदां
(6) तात्यो कर ग्यो रापारोल
(7) मरद टण्ट्यो
(8) आयो जबर टण्ट्यो
(9) टण्ट्यो म्हारो भायो
(10) टण्ट्यो भील बड़ो लरैया

उपरोक्त गीत–गाथाओं के अतिरिक्त भी अनेक कथा गीत वारताऐं वनवासी अंचलों में प्राप्त हो जाती हैं । ये कथा, गीत गाथाऐं और वारताऐं टण्ट्या की जनक्रांति का यश बखान तो करती ही है उस क्राँति को प्रमाणित भी करती है । लोक साहित्य, लोक मानस और लोक संस्कृति का ऐसा उज्जवल दर्पण होता है, जिसमें हम अपने अतीत का दृश्य भली भांति देख सकते हैं ।

लोक कथाकार कहता है–

शिव खऽ पाप कमायो छे, सत पत लूटण कपट रचायो छे ।
केतराई सतियाँ पऽ लूट पड़ी, सतियाँ खऽ सत मिटायो छे ।(9)

जब शिवा पटेल ने अपनी वासना का शिकार टण्ट्या की माता जीवणी को बनाना चाहा तब जीवणी सिंहनी की तरह दहाड़ उठी और कालिका की तरह शस्त्र धारण कर शिवा पर टूट पड़ी ।(10) जीवणी चामुण्डा बन गई । शिवा का रक्त पीने हेतु कालिका बन गई ।

जीवणी नऽ झट तंगो उठायो, झट तन कऽ खड़ी रही सामऽ ।
जाणे अम्बा मां खऽ रूप धरयो, कोई राकस खड़ों हुओ सामऽ ।।(11)

उस घटना के समय टण्ट्या केवल पाँच साल का था । टण्ट्या ने ऐसी घटनाऐं देखी और सुनी । उसने शिवा पटेल के गुण्डों के हाथों माँ का अपहरण होते देखा और जूझ कर उसे मरते हुए भी देखा । उसका खून खौल उठा । शिवा पाटिल ने टण्ट्या की माता जीवणी को अपनी हावस का शिकार बनाना चाहा तब जीवणी सिंहनी की तरह दहाड़ उठी ।

बदला को रक्त उकल उट्ठियो, थारो बंस निपूतो कर देऊँगा ।
तू खऽ काटा–काट टुकड़ा कर देऊँ, गिद्ध अर कूतरां धरदेऊँगा ।।(12)

विद्रोही टण्ट्या ने ऐसी जनक्रांति कर दी कि, समूचा वनवासी समाज अपने अधिकारों के लिए पटेलों के विरूद्ध शस्त्र उठा कर टण्ट्या ब्रिगेड में शामिल हो गया ।

नीमाड़ पहले नर्मदा सिंगाजी और अहिल्याबाई के नाम से जाना जाता था । बाद में वह इनके अलावा टण्ट्या के नाम से भी पहचाना जाने लगा । टण्ट्या क्रांति का किवदंती पुरूष बन गया ।

महाकवि दिनकर ने ठीक ही कहा है –

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू, त्याग तप से काम ले यह पाप है ।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है ।।(13)

अन्याय का प्रतिकार करना मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है । यही पुनीत कर्तव्य निभाया टण्ट्या की भाँति अन्य कई विद्रोही ''लूटण्या ने लूटण'' में समय–समय पर सक्रिय बने रहे । सबका लक्ष्य था । जो हम वनवासियों को लूट रहा है । उसे लूटना है । ऐसे जन क्राँतिकारियों में कान्या नायक, दशरथ, देवचन्दा, सुभन्या, रामा, उचीत्या, खाज्या, धूलिया, शेख दुल्ला, नादिरसिंह, चील नायक, सरदार हरिया, उचेतसिंह, भीमा नायक, गोडाजी, दंगलिया, शिवराम, पेड़िया, बुन्दी, सुतवा, भागोजी, काजरसिंह, जसुदा पोमली, बिझुनिया, और दोषिया का नाम प्रमुखता से लोक में ख्यात है । इनमें से कुछ टण्ट्या से पहले हुए और कुछ समकालिन रहे ।

इन जन क्राँतिकारियों में लोक नायक टण्ट्या का ही समकालिन भीमा नायक हुआ था । जिस प्रकार लोक साहित्य ने टण्ट्या के क्राँतिकारी चरित्र को उजागर किया वैसा ही भीमा नायक के चरित्र पर भी उसके कार्यकलापों से सम्बन्ध लोक साहित्य को ही आधार बनाना होगा । लोक साहित्य इतिहास की प्रतीक्षा नहीं करता । कंठानुकंठ पारंपरिक रूप से लोक सृजित साहित्य विश्व इतिहास का प्रमाणिक दस्तावेज होता है । किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय, उसके नायकों की यश गाथाओं को लोक ही सदा जीवति बनाए रखता है । लोक साहित्य का सृजक समग्र लोक होता है । लोक सृष्टा और दृष्टा होता है । वह आंखन देखी कहता है । इसीलिए लोक साहित्य को अपौरूषेय कहा गया है । इसकी कथाएँ, गाथाएँ, गीत, किवदंतियाँ, वात, वार्ताएँ, गेर–गालियाँ सबकी सब प्रमाण पर आधारित होती है । लोक साहित्य तिथियों से अधिक घटनाओं पर ध्यान देता है ।

भीमा नायक वनवासी समाज का महान क्राँतिकारी जुझारा था । उसका विद्रोह भी अन्य वनवासी जन क्राँतिकारियों की तरह अन्याय और अनाचार के विरोध में था । भीमा नायक की गाथा पर वनवासी लोक संस्कृँति के मर्मज्ञ विद्धान

श्री डॉ. निकुंज ने काम किया हैं । उनकी चर्चित भीमा नायक पुस्तक इस वीर जुझारे वनवासी के विद्रोह की यश कीर्ति पर प्रमाणिक प्रकाश डालती है ।(15)

मैं अपने इस आलेख में भीमा नायक पर गायी जाने वाली एक ''गेर'' का उल्लेख करना चाहता हूँ । कितने आश्चर्य की बात है कि, भीमा नायक दशपुर अंचल में कभी नहीं आया । यहाँ का वनवासी समुदाय इस जन नायक को होली के दिनों में चंग पर 'गेर' के माध्यम से बखानता है । टण्ट्या भील दशपुर जनपद में कभी नहीं आया किन्तु दसौरी मावली में एक सम्पूर्ण गाथा इस अंचल में बखानी जाती रही है ।(16)

इसी प्रकार बंजारी भाषा में टण्ट्या की गाथा का दशपुर जनपद में मिलना भी महानायकों की यश महनीयता सिद्ध करता है ।

महात्मा गाँधी इस अंचल में कभी नहीं आए किन्तु यहाँ का स्वतंत्रता संग्राम पराकाष्ठा पर था । मैंने 108 स्वतंत्रता सेनानियों का जीवन चरित्र अपने ग्रँथ 'मंदसौर जिले के स्वतंत्रता सेनानियों(17) में लिखा है । यह सब आंदोलन की लोक स्वीकृति का प्रभाव है ।

इस अंचल में उपलब्ध गाथा ''गेर'' शैली में चंग पर गाई जाती रही है । वस्तुतः यह गेर गाथा भीमा नायक के समग्र विद्रोह को सहज एवं संक्षिप्त रूप में व्यक्त करती है ।

लोक गायक बखानता है – (18)

अँग्रेजों पे भारी पड़ग्यो, भीमो नायकड़ो ।
धणों पदायों रे के भीमों नायकड़ो ।।
बोल भीमा नायकड़ो ।
गज्जब कर गयो, न्हार, भीमो नायकड़ों ।। 1 ।।
एक हाथ में भालो ढाबे, दूजा में तरवार ।
भालो तो छाती में घाले, गाबड़ पै तरवार
गोफण्या भाटा तीमारे, भीमो नायकड़ो ।
बोल भीमो नायकड़ो ।
कर गयो बंठाढार, भीमो नायकड़ो ।।2।।

कैं तो लूटे सउकारां ने, कै पाटिल ने लूटे ।
अँग्रेजाँ का चाकर देखे, धम्मक–धम्मक कूटे ।
गरीब–दूबरा को ई हलमल धन अण तन दोई लूटे ।
लूटण्या के खुल्ले लूटे, भीमो नायकड़ो ।
बोल भीम नायकड़ो ।
अँग्रेजाँ के धूल चटा गयो, भीमों नायकड़ो ।
लूटण्या का खोज मिटा गयो, भीमों नायकड़ो ।।3।।
राड़ी भीतर धंसे, जीमणे, डावें जा ने निकरे ।
हात नी आवे, घणो पदावे, करे घणो यो दिक रे ।
न्हार सरीखो गाजे भीमो, अँगेजा पे टूटे ।
छावणियाँ पे घात लगावे, भीमो नायकड़ो ।
बोल भीमो नायकड़ो ।
के कांकड़ वालो, न्हार, भीमो नायकड़ो ।।4।।
फोजां बीचे घिर्‌यो न्हारड़ो, उड़ी मार भग जावे ।
धोरे दन चकमो दे भीमो, आर–पार कढ़ जावे ।
राड़ी को राड़ी में भीमो, हात नी आ पावे ।
मगरी ऊपर डट्‌यो, नायक, तीखा तीर चलावे ।
फौजां ने ऊभो ललकारे, भीमो नायकड़ो ।
बोल भीमो नायकड़ो ।
के छाँट–छाँट ने सिपला मारे, भीमो नायकड़ो ।।5।।
सादिया नीच ने दगो कमायो, थी कोई जूनी खार ।
थाणादार अँग्रेज चढ़ आयो, पूजा बेठ्‌यो न्हार ।
पूजा करता नायक की मोरां पे कर्‌यो वार ।
बजर सरीखो डील न्हार को, टूट गई तरवार ।
पूजा में ती डिग्यो नहीं रे, भीमो नायकड़ों ।
बोल भीमो नायकड़ो ।
के बंदूकां के घेरे फस्‌यो, भीमों नायकड़ो ।।6।।

पूजा में भी जाग भीम जी होठां में मुलकायों ।।

एक वार में दगाबाज को जूनो करज चुकायो ।

केद नहीं होऊँ रे सिपला, ले म्हारी तरवार ।

तागत वे तो जोर लगा ने, कर दे गाठो वार ।

मोत मान ली हार नी मानी, भीमो नायकड़ों ।

बोल भीमो नायकड़ो ।

मन मरजी की मोत मांग ली, भीमो नायकड़ो ।

महाभारत को भीसम जाणो, भीमो नायकड़ो ।।7।।

एरे मेरे उभा सीपला, गज बंदूका ताणे ।

थर–थर धूझे भर्‌या जांगला, आंखाँ घुंघड़ धाणे ।

भाग चलो ओ थाणादार जी, नीतर बटका होसी ।

टूट पड़े ला भील जुझारो, घर में रांडा रोसी ।

नाम अमर कर गयो जुझारो, भीमो नायकडो ।

बोल भीमो नायकड़ो

के गजबो कारि गयो नाम, भीमा नायकड़ो ।।8।।

इस गेर–गाथा जब मैनें मनासा के अरावली पठार के भीलों के छोटे से गाँव 'हुवाड़ा' में बाजी भीमा मोरी से नुनी । तब न ढोलक थी न चंग । अगर कुछ था तो बाजी भीका जी का नब्बे वर्ष का झुरियों वाला तन, पोपली वाणी और अद्‌भुत उमंग । गेर खत्म होते–होते उनकी सांस फूल गई थी । मैंने इसे बहुत ऐतिहात से रेर्काड किया था । इसका भावार्थ कहूँ तो वह सारी बात साफ कर देगा । भीमा नायक अँग्रेंजों पर भारी पड़ने लगा था । उसने अँग्रेजों को खूब तंग कर दिया । वह एक हाथ में भाला और दूसरे हाथ में तलवार रखता था । भाले से दुश्मनों की छाती भेदता था और तलवार से गर्दन काट देता था । गोफण से अचूक निशाना लगाता था । अँग्रेजो के सिपाहियों को वह छोड़ता नहीं था ।

भीमा नायक साहुकारों, पटेलों और अँग्रेजो के पिठ्ठुओं को ही लूटता था । अँग्रेजों के हिमायती दिख जाते तब उनकी बुरी तरह पिटाई करता था । ये सभी

गरीबों, दीन, हीनों के तन और धन का शोषण करते थे और वनवासियों की बहन बेटियों की इज्जत लूटते थे । वनवासियों से बेगार लेते थे और उनके खेतों पर उन्होंने अधिकार कर लिया था।

भीमा नायक गजब का छापामार था । जंगल में दाएँ भाग से घुसकर बाएँ भाग से निकल भागता । वह कभी हाथ नहीं आता था । खूब परेशान करता था । अँग्रेजों पर वह सिंह सरीखी गर्जना करता हुआ टूट पड़ता था । उसका नाम सुनते ही अँग्रेजों की छाती धक–धक होने लगती थी । भीमा सरे आम दिन–दहाड़े फौज के सिपाहियों को चकमा देकर निकल भागता था । वह जंगल में ही छुपा रहता किन्तु सिपाहियों के हाथ नहीं आता था । भीमा मगरी पर चढ़कर फौज को ललकारता था और बाणों की बौछार करता था ।

उसी के एक साथी ''सदिया'' ने धोखा देकर किसी पुरानी दुश्मनी का बदला लोने के लिए उसके छुपने का स्थान बता दिया । वह अँग्रेज थानेदार को सिपायिों सहित भीमा के गुप्त ठिकाने पर ले गया । भीमा पूजा में बैठा था । उसका ध्यान पूजा में था । उसे अँग्रेज थानेदार ने अपने सिपायिों द्धारा घेर लिया । अंग्रेज थानेदार ने पूजा में लीन भीमा की पीठ पर तलवार का वार कर दिया । भीमा का शरीर तो वज्र जैसा था । तलवार टूट गई । भीमा नायक पूजा से डिगा नहीं । वह बंदूको के घेरे में घिर चुका था । कुछ विद्धानों की मान्यता है कि, सादिया को भीमा नायक के भील साथी ने बाण से मार डाला था । यह बात इसलिए विश्वसनीय नहीं लगती कि, यदि भीमा नायक की रक्षा में कोई वहाँ उपस्थित होता तब वह कुर्राटी करके भीमा व उसके अन्य साथियों को सचेत कर देता । ऐसा नहीं हुआ । भीमा वहाँ अकेला ही था । भीमा नायक पूजा से विरत हुआ । वह सब को देखकर होठों–होठों में मुस्काया । वह निर्भिक रहा । उसकी निगाह दगाबाज सादिया पर पड़ गई । वह सब कुछ जान समझ गया । उसने तलवार के एक वार से ही उसका सारा कर्ज चुका दिया ।

उसने उसी स्थान पर बैठे–बैठे थानेदार को ललकार कर कहा ''अरे सिपले – मैं तुम्हारे हाथों गिरफ्तार होने के बजाए मरना ठीक समझता हूँ । लो यह मेरी तलवार थामो और पूरी ताकत के साथ मुझ पर वार कर दो । ''भीमा नायक महान विद्रोही था । उसने महाभारत के भीष्म पितामह की तरह मन मरजी की मौत मांग ली लेकिन हार नहीं मानी ।

भीमा नायक के चारों ओर सिपाही बंदूके ताने खड़े थे । भीमा नायक का शौर्य देखकर वे थर–थर काँप रहे थे । उनकी पतलूने पाखाने से भर गई थी। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छोने लगा था । उन्होंने अँग्रेज थानेदार को चेताया ''फोरन भाग चलो । जान बचा लो । इसके साथी भील आ पहुँचे तो हम सब को काटकर टुकड़े–टुकड़े कर देगें । हमारी औरतें विधवा होकर रोती रहेगी । भीमा नायक गजब का शौर्यवान विद्रोही जुझारा था । वह अपने नाम को अमर कर गया ।

यह गाथा भले ही आठ पदों की छोटी सी रचना है किन्तु इसका कथानक किसी भी बड़ी से बड़ी गाथा से बड़ा है । इस गेर गाथा के अनुसार भीमा नायक अपनी ही तलवार द्वारा मन मरजी से अँग्रेज थानेदार के हाथों शहीद हो गया किन्तु डॉ. निकुंज ने उसके गिरफ्तार होने और काले पानी(19) भेज देने का उल्लेख भी किया है ।(20)

उनके अनुसार भीमा नायक को जब घेर लिया गया तब वह घेरा तोड़कर भाग रहा था । तभी वह पत्थर की ठोकर खा गया और उसकी पाग नीचे गिर पड़ी । पाग का गिरना अपशकुन माना जाता है । पाग सम्मान का प्रतीक होती है । इसलिए वह पाग उठाने के लिए झुका । इसी बीच उसे घालय कर दिया गया और पकड़ लिया गया । भीमा को 10 वर्ष मंडलेश्वर जेल में रखा गया । वहाँ से वह 6 वर्ष में छूट गया । उसे दुबारा गिरफ्तार कर के कालेपानी भेज दिया गया । वहीं जेल में उसकी मौत हो गई ।

झाबुआ अंचल वनवासी जनजातियों का नाभी स्थल है । वहाँ का जनवजीवन उमंग, उल्लास, उत्सव, ऊर्जा और संघर्षमय है । अनेक गीत गाथाएँ आज भी पारंपरिक रूप से कंठानुकंठ जीवित है । जितना काम वनवासी लोक साहित्य पर अब तक हुआ है । वह कुल का दसवां प्रतिशत भी नहीं है । लोक कलाविद् बसंत निरगुणे एवं मांगीलाल सौलंकी आदि ने वनवासी लोक साहित्य पर खूब काम किया है । जितना किया है वह तो प्रमाणित है किन्तु जितना शेष बचा है वह भी उन्हें एक टीम बना कर, कर ही लेना चाहिए । उदाहरण के लिए पिथौरा पर निरगुणे जी का काम अभी भी अनेक जिज्ञासाऐं अपने भीतर छुपाए हुए है ।

भीमा नायक का विद्रोही जीवन पूरी तरह अभी भी लोक के सामने प्रकट होना शेष है । टण्ट्या भील पर मैंने जो काम किया है । वह अंतिम नहीं माना जा सकता । मध्यप्रदेश में नीमाड़ से लगाकर दशपुर जनपद तक वनवासी जनजीवन छितरा–बखरा पड़ा है । मध्यप्रदेश के मेवाड़ी छोर और महाराष्ट्र के सीमा क्षेत्र पर भी हमें ध्यान देना पड़ेगा ।

दशपुर अंचल के पठारी क्षेत्र में उपलब्ध गाथा भील ठिकाणा की विरद गाथा में जिस तरह भील सत्ता और भील कन्याओं की जुझारू कथा–गाथाएँ बखानी गई है । वे इस अंचल की वनवासी जनजातियों के वीरत्व की यश पताकाएँ हैं ।(21) अंचल की वनवासी वीरांगनाओं की शौर्य गाथाएँ जानकर मन गौरव से भर जाता है । वे सभी वीरांगनाएँ इस अंचल में पूज्य दैवियों के रूप में स्थापित है । यह लोक का उन लोक नायिकाओं के प्रति वन्दनीय सम्मान है । लोक जब स्वीकारता है तो ऐसी ही धन्यता प्रदान करता है । जब नकारता है तब कहीं का नहीं छोड़ता । अरावली पठार पर स्थापित शक्तिपीठों में पूज्य इन भील वीरांगनाओं की प्रशस्ति में लोक साहित्य विशेषकर वनवासी लोक साहित्य के विद्वान मनीषी डॉ. मेहन्द्र भानावत ने मेरी पुस्तक ''भील लोक माताओं'' की भूमिका में लिखा है – ''यह सर्वथा महत्वपूर्ण साक्ष्य है कि, डॉ. पूरन सहगल ने जिन देवियों का अध्ययन किया है वे सबकी सब भील कन्याएँ थीं । भीलों का वर्चस्व किसी समय बड़ा जबरदस्त था । इनके स्वतंत्र राज्य थे । इनकी अपनी सत्ता थी । जिसके आगे अच्छे–अच्छे रणबाजखाँ पानी भरते थे । ये वे भील हैं जिनके साथ महाराणा ने अपना दुखभरा जीवन काटा और जिनसे सर्वाधिक विश्वास, शौर्य, साहस और सम्पबल प्राप्त किया ।(22)

वनवासी जीवन जितना संघर्षमय है उतना ही श्रृंगारमय ही । निराशा और हताषा वनवासियों के जीवन में नहीं होगी । उनके लोक जीवन पर लोक साहित्य पर, लोक कलाओं पर अभी भी शोधपर्क दृष्टि शोधार्थियों की नहीं गई है । मैं इसे इस संघर्षशील समुदाय के लोक साहित्य के प्रति शोधार्थियों की अवहेलना और उपेक्षा मानता हूँ । उसके आकलन में सबने कहीं न कहीं चूक की है ।

यदि हमें वनवासी लोकजीवन पर उसकी लोक संस्कृति पर शोध करना है तब हमें उतना ही संघर्षशील बनना पड़ेगा जितना संघर्षमय इस समुदाय का जीवन है । अपनी एक कविता की इन पंक्तियों से मैं अपने आलेख को समाप्त करूगाँ ।

'' हम वनवासी हैं, बाँस वन है ।
जितना काटोगे उतना बढ़ेगें ।
झूमेंगे, नाचेगें, गाएँगें, चंग बजाएँगे ।
आँधी और तूफान में भी डटे रहेंगे ।
सीटियाँ बजाएँगे ।
वनवासी हैं हम,
छेड़ोगे तो तमतमाएँगे, शस्त्र उठाएँगें ।
हथेलियाँ रगड़ेंगे तो आग लगाएँगे ।(23)

❐

सन्दर्भ –

1. *डॉ. सत्यनारायण, जनजातीय लोक गीतों का भाव सौंदर्य, ट्राईब–वाल्यूम–37, अंक–जनवरी–जून*
2. *डॉ. पूरन सहगल, भील भाट झलक्या की, भील ठिकाणा की विरद गाथा, विरद बखाण और गाथा साहित्य ।*
3. *वही पद पद–12–13, 39–41*
4. *वही पद– 105–106*
5. *दश्पुर जनपद की लोक माताएँ*
6. *डॉ. पूरन सहगल, विरद बखाण और गाथा साहित्य–भील ठिकाणा की विरद गाथा 15–24*
7. *वही पृ. 23 पद/99–102*
8. *डॉ. पूरन सहगल, टण्ट्या भील, प्रसतावना खण्ड*
9. *डॉ. पूरन सहगल, गाथा टण्ट्या देवत की – टण्ट्या भील घणो लरैयो : डॉ. पूरन सहगल*
10. *वहीं*
11. *डॉ. पूरन सहगल, गाथा टण्ट्या देवत की–पद 11*
12. *डॉ. पूरन सहगल, प्रस्तावना खण्ड, टण्ट्या भील*
13. *रामधारीसिंह दिनकर, कुरूक्षे.–सर्ग–2*
14. *डॉ. पूरन सहगल, प्रस्तावना खण्ड, टण्ट्या भील*
15. *डॉ. पूरन सहगल, विरद बखाण और गाथा साहित्य–भील ठिकाणा की विरद गाथा 15–24*
16. *डॉ. निकुंज, भीमा नायक*
17. *डॉ. पूरन सहगल, वारता टण्ट्या मामा अंण भीलणी की*
18. *डॉ. पूरन सहगल, भीमा नायक की गेर–गाथा, यह गाथा मैंने बाजी भीकाजी मोरी आयु लगभग नब्बे वर्ष, गौत्र हुआडा, तह. मनासा–अरावली पठार से 11 फरवरी, 2001 में टण्ट्या पर शोध करने के दौरान रेकार्ड की थी ।*
19. *प्रस्तुत गेर गाथा में भीमा द्वारा मृत्यु वरण करने का उल्लेख तो है किन्तु उसके शहीद हो जाने का स्पष्ट उल्लेख करने वाला कोई प्रमाणिक पद नहीं है ।*
20. *डॉ. पूरन सहगल, टण्ट्या भील तथा डॉ. निकुंज, भीमा नायक*
21. *डॉ. पूरन सहगल, भीली लोक माताएँ (दशपुर जनपद अरावली पठार)*
22. *डॉ. पूरन सहगल, भीली लोक कथाएँ, भूमिका खण्ड ''आँख मंडावण, पृ. 9*
23. *डॉ. पूरन सहगल, अंधेरे के उस पार–काव्य संग्रह*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 45–51 ***ISSN 0974 -1100***

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसका प्रभाव

डॉ. धर्मेन्द्र कौशल

साम्राज्यवाद से अभिप्राय भिन्न जाति वाले देश पर किसी दूसरे जाति वाले देश का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हो जाना अर्थात् जब कोई देश किसी अन्य देश पर किसी भी उपाय से अपना शासन स्थापित कर लेता है तो उसका यह काम साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लेता है। साम्राज्यवाद का विकास एक अद्‌भुत एवं रहस्यमय पहेली है। केवल एक सैनिक अथवा पर्यटक या नौ सैनिक द्वारा किसी अज्ञात स्थान पर झण्डा गाड़ देने का अर्थ था, उस अज्ञात स्थान पर उस व्यक्ति के मातृदेश का अधिकार। केवल एक व्यक्ति के साधारण कार्य के द्वारा विशाल भूखण्डों और उस पर पहले से आबाद जातियों के भाग्य का निर्णय किया जाना, वास्तव में आश्चर्यजनक एवं अपमान की बात है, परन्तु यूरोप के लोलुप साम्राज्यवादी देशों के लिए यह गौरव की बात थी।

पन्द्रहवी सदी से यूरोपीय राष्ट्रों ने विश्व के अज्ञात क्षेत्रों को अधिकृत करके जो साम्राज्य खड़ा किया उसे औपनिवेशिक साम्राज्य के नाम से पुकारा जाता है। इसका मुख्य आधार वाणिज्यवाद था। व्यापार और उद्योग को नियमित करके सोना–चाँदी प्राप्त करने की नीति ही वाणिज्यवाद कहलाती है। दूसरे राष्ट्रों में यूरोपीय देशों का मुख्य ध्येय उपनिवेशों से व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। साम्राज्यवादी देशों द्वारा उपनिवेशों के आर्थिक शोषण के कारण औपनिवेशिक साम्राज्य को आर्थिक साम्राज्यवाद के नाम से पुकारा जाता है ।[1] सैद्धांतिक तौर

पर उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बीच एक भेद किया जा सकता है। साधारणतः शुद्ध उपनिवेशवाद का सम्बन्ध लोगों के बसने से है जबकि शुद्ध साम्राज्यवाद राजनैतिक अवधारणा है। इस अवधारणा का तात्पर्य किसी क्षेत्र पर राजनैतिक नियंत्रण कायम करना है। इसी तरह रोमनों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था और प्रान्तों में अपना प्रशासन भी लागू किया। परन्तु ये उपनिवेश अधिकांशतः उपसाम्राज्य थे। इन उपनिवेशों में अधिकारी, सैनिक और व्यापारी रहा करते थे। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद इनमें से अधिकांश लुप्त हो गये।

उपनिवेशवाद से तात्पर्य ऐसे लोगों के समूह से है जो बेहतर जीवन यापन और समृद्धि की खोज में अपनी मातृभूमि को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाकर बस जाते है। उपनिवेशवाद तीन प्रकार के होते है, पहला, जिसकी एक मिसाल संयुक्त राज्य अमेरिका है, जहाँ उपनिवशी लोगों ने स्थानीय लोगों की संख्या, दौलत और तकनीक के बल पर या तो मार दिया या फिर वैवाहिक संबंध स्थापित करके अपने में समाहित कर लिया। अमेरिका और आस्ट्रेलिया महाद्वीप इसी तरह के उपनिवेश के उदाहरण है। इसी प्रकार दूसरा उपनिवेशवाद वह है जिसमें विदेशी लोग समृद्धि की तलाश में कही जाकर बस जाते है और बेहतर सैन्य क्षमता के बल पर स्थानीय लोगों को दास बना लेते है। अफ्रीकी महाद्वीप में पनपा उपनिवेशवाद इस प्रकार के उपनिवशवाद की मिसाल है। इन दोनों ही तरह के उपनिवेशवाद में उपनिवेशी लोगों का संबंध अपनी मातृभूमि से या तो पूरी तरह से खत्म हो गया अथवा क्रमशः क्षीण होता चला गया। तीसरे प्रकार के उपनिवेशवाद में उपनिवेशी लोग दूसरे देश में आकर बसते नहीं है बल्कि कुछ समय बिताकर अपनी मातृभूमि वापस लौट जाते है। लेकिन केन्द्र और उपनिवेश का सम्बन्ध संस्थागत तौर पर न केवल जारी रहता है बल्कि व्यापारिक लाभ और राजस्व भी उपनिवेशवादी देश में जाता रहता है। यह तीसरी तरह का उपनिवेशवाद ऐतिहासिक तौर पर पहले दोनों तरह के उपनिवेशवादों के बाद उपजा और विशेषकर एशिया में दृष्टिगोचर होता है। भारत इसी प्रकार के उपनिवेशवाद का एक उदाहरण था।[2]

1492 ई. में स्पेन की रानी की सहायता से कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की। 1498 ई. में वास्कोडिगामा भारत के सुप्रसिद्ध बन्दरगाह कालीकट पहुँच गया और एशिया में उपनिवेशों की स्थापना का सिलसिला शुरु हुआ और भारत तथा सुदूर–पूर्व में व्यापारिक चौकियाँ कायम की जाने लगी। अफ्रीका के समुद्री तटों पर भी केन्द्र स्थापित किये जाने लगे।[3] एशिया और अफ्रीका में यूरोपीय लोगों ने अपनी स्थायी बस्तियाँ बसाने से परहेज किया। दक्षिण अफ्रीका इसका अपवाद है जहाँ यूरोपीय प्रचुर खनिज भण्डार के लोभ में बस गए। एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों ने विभिन्न लाभप्रद वस्तुओं और दासों के व्यापार के लिए यूरोपीय शक्तियों को आकर्षित किया। गौरवशाली प्राचीन सभ्यताओं वाले एशिया और अफ्रीका महाद्वीप शक्तिशाली नौसेना और बारूदी शस्त्रों से लैस यूरोपीय शक्तियों के हमले के समक्ष नहीं टिक सके।[4]

उन्नीसवी सदी के अंतिम पच्चीस वर्ष में उपनिवेशवाद का तीव्र गति से प्रसार हुआ। यह वह युग था जब पूँजीवाद ने तेजी के साथ साम्राज्यवाद का रूप धारण किया और मानव जाति की प्रगति में बाधा बनकर खड़ा हो गये। उन्नीसवी सदी का अंत और बीसवीं सदी का आरम्भ पूँजीवाद के साम्राज्यवाद में रूपान्तर और साम्राज्यवादी युद्ध के आरम्भ के साथ हुआ। सिर्फ यही नही उनका अंत और आरम्भ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के आरम्भ और समाजवादी क्रांतियों की प्रस्तुति के साथ भी हुआ। आगे चलकर इन्होंने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की शक्तियों की चुनौती को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया।[5] प्रारम्भ में साम्राज्यवादी औपनिवेशिक विस्तार की ओर अग्रसर प्रमुख देशों में ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, पुर्तगाल आदि देश थे।

1876 में जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान के पास एक भी उपनिवेश नहीं था। वे दूसरे देशों पर कब्जे की दौड़ में इसके बाद उतरे और 1914 तक क्रमशः 29 लाख, 3 लाख और 3 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के तथा 123 लाख, 27 लाख और 192 लाख जनसंख्या के उपनिवेश उनके हाथों में आ गए।[6] वे नए साम्राज्यवादी देश थे, जबकि ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, पुर्तगाल पुराने साम्राज्यवादी थे। इनमें ब्रिटेन सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश था। 1900 में

उसके अधीन दशों का क्षेत्रफल स्वयं उसके क्षेत्रफल का 109 गुना और जनसंख्या उसकी जनसंख्या की 8.8 गुना थी।[7]

इंग्लैण्ड ने भारत में भी व्यापारिक उपनिवेश की स्थापना की। प्रारम्भ में वे अंग्रेज व्यापारियों के रूप में भारत आये और धीरे–धीरे यहाँ के राजनैतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1656 में बंगाल के तत्कालीन सुबेदार शहजादा शाहशुजा से और फिर 1717 में मुगल सम्राट फरूखसियर से व्यापार के लिए जो आज्ञा पत्र प्राप्त किये थे वे खुद भारतीय व्यापारियों के विरुद्ध थे। साल भर में सिर्फ 3000 रु. कर देकर वे आयात और निर्यात शुल्क से एकदम मुक्त हो गए थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने निजी लाभ के लिए इन आज्ञा पत्रों का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया जो भारतीय व्यापारियों के लिए और भी हानिकारक सिद्ध हुआ।[8] 1757 के प्लासी युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने बंगाल की शासन सत्ता अपने हाथों में केन्द्रीत कर तीव्र गति से वहाँ आर्थिक शोषण प्रारम्भ किया। युद्ध के पूर्व कम्पनी को भारत में माल खरीदने के लिए इंग्लैण्ड से सोना चाँदी लाकर भारत के खजाने में जमा करना पड़ता था। प्लासी युद्ध के बाद कम्पनी को इतना धन प्राप्त हुआ कि उन्होंने भारत के व्यापार के साथ–साथ उस धन को चीन के व्यापार में भी लगाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार बंगाल का जो आर्थिक शोषण हुआ उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। नवाब मीरजाफर के समय इस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने माँग की कि बंगाल के अन्दर भी उनसे किसी प्रकार का व्यापारिक शुल्क नहीं लिया जाए। भारत में ही भारतीय व्यापारियों को शुल्क देना पड़ता था, लेकिन अंग्रेज व्यापारियों को कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था। मीरकासिम ने जब भारतीय व्यापारियों पर से भी व्यापारिक शुल्क हटा दिया तो अंग्रेज क्रुद्ध हो गये और उसके खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। 1764 में बक्सर के युद्ध में मीरकासिम की पराजय हुई। मीरकासिम द्वारा भारत में भारतीय व्यापारियों को समान अधिकार देने के अपराध में बंगाल की नवावी और अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा।

भारत में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप यहाँ का दस्तकारी उद्योग बर्बाद हो गया। भारत में अंग्रेजों के आने के पहले यहाँ के शहरों में दस्तकारी का उच्च कोटी का काम सदियों से चला आ रहा था। उनकी

कलात्मकता उच्चकोटी की थी और उनकी ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। इसलिए भारतीय उद्योगों का माल दुनिया के बाजारों में छाया हुआ था। इस सम्बन्ध में कैलबर्टन ने लिखा है कि प्राचीनकाल में जब रोम के निजी और सार्वजनिक भवन में भारतीय कपड़ों, दीवानदारी, तामचीनी, मोजेक हीरे–जवाहारात आदि का उपयोग होता था, उस वक्त से औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ तक आकर्षण और उद्दीपक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज था।[9] लेकिन ये उद्योग प्रधानतः घरेलु थे और कृषि के साथ उनका गहरा सम्बन्ध था। ये उद्योग स्थानीय जनसंख्या, ग्राम, समाज और शासकों की जरूरतों को पूरा करते थे और बहुत से माल को अन्य देशों में व्यापारियों के द्वारा भेजते थे।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण यहाँ के उद्योग धंधों को गहरा आघात पहुँचा। वे यहाँ कच्चे माल का ब्रिटेन के उद्योग एवं कारखानों को निर्यात करते थे जिनसे तैयार माल का उत्पादन कर भारत के बाजारों में ऊँचे दामों पर बेचा जाता था। ब्रिटेन में भारतीय कपड़ों एवं अन्य वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इंग्लैण्ड में भारतीय सूती और रेशमी कपड़े पहनने अथवा इस्तेमाल करने पर रोक भी लगवा दी। इस कानून को भंग करने वाले को 200 पौंड का जुर्माना देना पड़ता था।[10] ब्रिटेन के छोटे उद्योगपतियों की माँग पर 1780 में भारतीय छींट का इंग्लैण्ड में आयात चार साल के लिए पुनः बंद कर दिया गया।[11]

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप भारत के कृषि व्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। बंगाल में दोहरी शासन व्यवस्था के परिणामस्वरूप कृषि को काफी हानि पहुँची। लगान वसूल करने के लिए ठेकेदारी प्रथा प्रारम्भ की गई जिसके तहत अधिक से अधिक लगान वसूल करके देने वाले को ठेके दिये जाने लगे। ये ठेकेदार किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करने का जी तोड़ प्रयास करते थे, क्योंकि इन्हें अपने लिए भी मुनाफा कमाना होता था और फिर इस बात की कोई गारण्टी नहीं थी अगले वर्ष मौजूदा क्षेत्रों से राजस्व वसूली का काम मिल ही जायेगा। ये ठेकेदार बहुत कड़ाई से लगान वसूल करते थे। विलियम वोल्टस जो कम्पनी के एक कार्यकर्त्ता थे के अनुसार इन निर्धन किसान लोगों को कई बार तो अपने बच्चे तक बेचने पड़ जाते थे तथा भूमि छोड़ कर भाग

जाना पड़ जाता था। कई किसान तो डाकू बन गए। 1770 में एक अकाल पड़ा जिससे अत्यधिक जान और माल की हानि हुई। यह निश्चित है कि कुछ प्रदेशों में लोगों ने मृतकों को खाया है। अकाल के दिनों में भी भूमि कर बहुत दृढ़ता से संग्रह किया गया। कम्पनी के कार्यकर्त्ताओं ने लोगों की आवश्यक वस्तुओं में भी दाम बढ़ाकर लाभ कमाया तथा जनता को बहुत कष्ट हुआ।[12]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक ही मकसद था ज्यादा से ज्यादा कर संग्रह करना बतौर उदाहरण 1812 में बरेली में कर संग्रह का काम 10 महीनें में पूरा कर लिया गया। यह एक रिकार्ड था। कर की दर बढ़ा दी गई थी जिसमें 14 लाख 73 हजार 188 रुपए ज्यादा वसूल किए गये थे। सरकार ने कर संग्रह करने वाले अधिकारियों को बधाई दी। सरकार ने यह नही सोचा कि इतना अधिक पैसा इतने कम समय में कैसे वसूला गया। अधिकारियों ने कर वसूलने के लिए जनता पर बेइंतहा जुल्म ढाए। उनसे डंडे के बल पर पैसा वसूला गया जिनके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था। एक कलेक्टर ने कई बार सरकार को लिखा कि वह अपने इलाके से वसूली नहीं कर सकता क्योंकि वहाँ सिवाय घास के और कोई फसल नहीं हुई है। सरकार का निर्देश आया–घास अच्छी चीज है, इसी को बिकवाकर टैक्स वसूलिए।[13]

लार्ड कार्नवालिस ने भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था को लागू करने के उद्देश्य से समस्त उच्च पदों पर यूरोपियन लोगों को नियुक्त किया। कार्नवालिस की दृष्टि में कोई भी भारतीय शासन व्यवस्था को चलाने के योग्य नहीं है। इस प्रकार कार्नवालिस ने भारतीयों की योग्यता पर अविश्वास करके उनके लिए उच्च पदों के द्वार बिल्कुल बंद कर दिये।[14] जिससे भारत के शिक्षित वर्ग के साथ बहुत अन्याय हुआ और उस वर्ग में उपनिवेशियों के प्रति जनाक्रोश की भावना उत्पन्न होने लगी और 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में इसका प्रभाव दिखाई दिया।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रभाव यहाँ की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। सभी प्रकार के घरेलु उद्योग धंधे बंद हो गये, स्वदेशी वस्तुओं की खपत कम हो गयी, विदेशी वस्तुएँ समस्त भारत वर्ष में प्रयोग में लाई जाने लगी। साम्राज्यवाद का कृषि पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। उत्पादन

कम होने लगा जिससे गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, अशिक्षा समस्त भारत वर्ष में व्याप्त हो गई। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ने भारत का गहरा आर्थिक शोषण किया जिसका प्रभाव आजादी के बाद तक दृष्टिगत होता है।

❐

सन्दर्भ –

1. *शर्मा, व्यास – पाश्चात्य विश्व का इतिहास, जयपुर, 2009, पृ. 262.*
2. *चौबे, शिवानी किंकर – भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 2000, पृ ठ 2–3.*
3. *शर्मा, व्यास – पूर्वोक्त, पृ. 261.*
4. *चौबे, शिवानी किंकर – पूर्वोक्त, पृष्ठ 4.*
5. *अयोध्या सिंह, – भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 2003, पृ ठ 151.*
6. *लेनिन – इंपीरियलिज्म, दि हाइयेस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज्म, सिलेक्टेड वर्क्स, भाग–1, फारेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को, 1946, पृष्ठ 688.*
7. *प्रो. ए. जेड मैनफ्रेड – ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दि बर्ल्ड, भाग 1, मास्को, 1974, पृ. 538.*
8. *बी. एफ. कैलबर्टन – दि अवेकनिंग ऑफ अमरीका, 1939, पृ. 18.*
9. *ए. आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 13.*
10. *कार्ल मार्क्स, – ईस्ट इण्डिया कम्पनी, उसका इतिहास और परिणाम, न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून के 11 जुलाई 1853 के अंक में प्रकाशित लेख।*
11. *रायचौधरी मजुमदार और दत्त – ऐन एडवांस हिस्ट्री ऑफ इंडिया, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1967, पृ. 802–3.*
12. *बी. एल ग्रोबर, अल्का मेहता, यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 63.*
13. *विपिन चन्द्र, म दुला मुखर्जी – भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, 1990, पृ. 5.*
14. *बी. एल. ग्रोवर, अल्का मेहता, यशपाल–पूर्वोक्त, पृ. 83.*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 52–78 **ISSN 0974 -1100**

1857 की क्रांति में दलित महिलाएँ

डॉ. नीता

"जली हैं धूप में शक्लें जो, माहताब की थीं।
खिंची है काँटों में जो पत्तियाँ गुलाब की थी।।"

1857 की लड़ाई, भारत की जनता द्वारा लड़ा गया एक ऐसा मुक्ति युद्ध था, जिसमें वर्ग, धर्म, वर्ण और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर स्त्रियाँ भी पुरु ाों के कंधे से कंधा मिलाकर लड़ी। वर्जीनिया वूल्फ के शब्दों में कहे तो इतिहास में जो कुछ भी अनाम है वह औरत से जुड़ा हैं, और वास्तव में इतिहास निर्माण में निर्णयकारी भूमिका में रहते हुए भी औरतों के योगदान की अनदेखी की गई है।[1]

क्रान्ति की ज्वाला सिर्फ पुरुषों को ही नहीं आकृ ट करती बल्कि महिलाओं को भी उसी आवेग से आकृ ट करती हैं। भारत में सदैव से नारी को श्रद्धा की देवी माना गया हैं, पर यही नारी जरूरत पड़ने पर चड़ी बनने से परहेज नहीं करती।[2]

अबला से बनती जब सबला।
तब नर से भी भारी नारी।।

यह सत्य है कि आरम्भ से ही नारी–पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लड़ती रही हैं। देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिये हुए सन् 1857 के महायज्ञ में अनेक स्त्रियों ने हँसते–हँसते अपने प्राणों की आहुति दे दी।[3]

इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक युग में ऐसी अनेक नारियां अवतरित हुई हैं जिन्होंने अपनी मेधा एवं ौर्य का परिचय दिया है।[4] झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हज़रत महल ये दोनों महिलाएँ ही 1857 की लड़ाई की सर्वमान्य नेता और नायक हैं।[5] इन्होंने ब्रिटिश सरकार के निरकुंश शासन के विरोध में क्रांति का बिगुल बजा दिया था।[6] उनके नाम तो स्वतंत्रता–संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं,, लेकिन जिन्होंने अपना प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष योगदान दिया और जिनके नाम किसी कारणवश उजागर नहीं हो पाये, विशेषकर दलित महिलाएँ।[7] 1857 की दास्तान उन दलित वीरांगनाओं के बिना अधूरी हैं, जिन्होंने अंग्रेजों को लोहे के चने चबवा दिये। इन वीरांगनाओं में से अधिकतर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे किसी रजवाड़ें में पैदा नहीं हुई बल्कि अपनी योग्यता की बदौलत उच्चतर मुकाम तक पहुँची।[8] उन्हें जन–साधारण के सम्मुख लाना इतिहासकारों का कर्तव्य हैं।

यह सर्वविदित है कि इतिहास एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं जो हमें बीते समय की राजनैतिक–सामाजिक एवं परिस्थितिजन्य घटनाओं, पूर्वजों के राष्ट्र, समाज, मानवता और विश्व बन्धुत्व हेतु किये गये पुनीत, महान एवं प्रशंसनीय क्रिया–कलापों की जानकारी देता है। यह किसी भी व्यक्ति, राष्ट्र व समाज के लिए धरोहर और स्वाभिमान से कम नहीं होता। क्योंकि यहीं हमें भावी जीवन में लक्ष्य–उद्देश्य प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास करने एवं कर्तव्य पालन की प्रेरणा देता है, ताकि हम भी उनका अनुसरण करते हुए अपने पथ का निर्धारण कर सकें और आने वाली पीढ़ियों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।[9]

इतिहास अतीत का दर्पण होता है। अतीत में क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ, यह सब हमें इतिहास बताता है। इसलिए इतिहास से यह अपेक्षा होती है कि उसमें पारदर्शिता हो। जो कुछ जैसा रहा है उसको वैसा ही चित्रित किया जाये। भारतीय इतिहास की यह विडम्बना है कि इसमें सब कुछ वैसा ही दर्ज नहीं है जैसा कि रहा हैं बहुत कुछ छोड़ा गया है, बहुत कुछ जोड़ा गया हैं। वस्तुतः भारत का लिखित इतिहास भारत के यथार्थ का आईना नहीं हैं। यह एक विशेष दृष्टि से लिखा गया इतिहास हैं जिसमें केवल क्षत्रिय या ब्राह्मण ही नायक अग्रणी हैं दलितों के विषय में इतिहास प्रायः मौन है या कहिए उनके प्रति उपेक्षा

भाव हैं। प्राचीन और मध्यकालीन ही नहीं आधुनिक भारत के इतिहास में भी दलितों के प्रति इस उपेक्षा भाव को देखा जा सकता हैं, अधिक दूर न जाकर हम 1857 को ले सकते है।

1857 भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 'गदर' नहीं, विद्रोह था– अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ। 1857 जैसी घटनाएँ इतिहास में कभी–कभी होती है। इसमें अन्य लोगों का गौरव–गान तो खूब मिलेगा, लेकिन दलित महिलाओं का कोई जिक्र नहीं हैं जबकि आज़ादी की लड़ाई में दलित महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया, रक्त बहाया और राष्ट्र के हित में बड़े से बड़ा योगदान और कुर्बानी देने में किसी से पीछे नहीं हैं।[10] इतिहासकारों ने उनके नाम को दबाया और उजागर नहीं होने दिया। इस देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने हमेंशा दलित चिंतन की उपेक्षा की हैं और आज भी वह इसे सही रूप में समझना नहीं चाहता। इतिहास में दलित महिलाओं की भूमिका को हम अभी भी स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। क्या इतिहास के पन्नों में दलित महिलाओं को स्थान पाने का हक नहीं हैं? यह हक सिर्फ रानी लक्ष्मीबाई और बेगम हजरत महल को हैं, क्यों, क्योंकि इसका मुख्य कारण यह है कि हमने अपने मन एवं ज्ञान रूपी संसार में दलित महिलाओं की एक छवि बना रखी हैं जिसमें हम उन्हें निरीह और अछूत रूप में देखते है। सदियों से हम यह मानते रहे हैं कि ये सिर्फ प्रताड़ित होने वाले समुदाय है, इनमें प्रतिरोध की चेतना रही ही नहीं हैं।

हम यह भी भूल जाते हैं कि दलितों में भी मन होता है, भाव होता है, उच्छ्वास होता है। वे अपने से ही नहीं, अपने आस–पास से भी संचालित होते हैं। हमने पहले ही मान लिया हैं कि दलित समाज निरीह रहा हैं, तो वह संघर्ष कैसे कर सकता हैं। जबकि हम भूल जाते हैं कि इतिहास के विभिन्न कालखण्ड दलित नायिकाओं के संघर्ष कालखण्ड रहे हैं।[11]

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ब्रिटिश साम्राज्य के तहत दलित वर्ग के सामने दोहरी जिम्मेदारियाँ थीं। जहाँ उन्हें सनातनी हिन्दुओं की परम्परागत प्रवृत्ति तथा सामन्तों, नवाबों के जुल्म और अत्याचारों का सामना करना पड़ता था, वहीं अंग्रेजी शासकों और प्रशासकों को भी वे जवाब देते थे। 1857 से पूर्व की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर अगर हम नजर डाले तो वह युग निरंतर परिवर्तनशील घटनाओं से ओत–प्रोत रहा।[12]

डी0सी0 डीन्कर का मानना है कि स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आज सच्चाई से देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि दलित महिलाएँ भी किसी तरह का बलिदान देने में पीछे नहीं रही बल्कि औरों से अधिक उत्सर्ग की भावना से आगे बढ़कर मातृभूमि के लिए फाँसी के फंदे को गले में डालकर और सीने में गोली खाकर शहीद हो गयी।[13]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम का श्रेय भले ही मंगल पाण्डे और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को दिया जाता हो, परन्तु उनके पीछे प्रेरणा स्रोत बने मातादीन भंगी की पत्नी लाजो और कोरी समाज की झलकारी बाई।[14] इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता और यह कटु सत्य भी है कि 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम में दलित समाज की महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इतिहास में ऐसे बहुत सारे विवरण मिलते हैं, जबकि दलित और शोि ात समाज की महिलाओं ने अपने–अपने गाँव, कस्बों, शहरों में ब्रिटिश सेना से जमकर मोर्चा लिया।[15]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जिन दलित महिलाओं ने बढ़–चढ़कर अपनी हिस्सेदारी निभाई उनमें, मातादीन भंगी की पत्नी लाजो, झाँसी की झलक़ारी बाई, मुजफ्फरनगर की महाबीरी देवी, लखनऊ की जगरानी पासी, रामगढ़ रियासत (मध्य प्रदेश) की रानी अवंतीबाई लोधी, ऊदा देवी तथा नन्हींबाई इत्यादि प्रमुख थीं।[16]

लाजो–

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में लाजो का विशेष महत्व हैं। लाजों की वजह से ही मंगल पाण्डे विद्रोह के लिए प्रेरित हुए। बैरकपुर छावनी कलकत्ता से 16 मील दूर था। वहाँ कारतूस बनाने का एक कारखाना था जिसमें बहुसंख्यक काम करने वाले मजदूर अछूत समझी जाने वाली जाति से संबंधित थे। एक दिन इसी अछूत जाति के एक व्यक्ति मातादीन भंगी को प्यास लगी। उसने एक सैनिक से लोटा मांगा। वह सैनिक मंगल पांडे सरीखा कर्मकांडी ब्राह्मण था। उन्होंने लोटा माँगने वाले व्यक्ति को जो उसका कारतूस बनाने वाली फैक्ट्री का कर्मचारी था, अपना लोटा यह समझ कर नहीं दिया कि वह तो नीच जाति का अछूत व्यक्ति है। लोटा न मिलने के कारण प्यासे कर्मचारी को अपमान–सा

लगा।[17] उसने मंगल पाण्डे से कहा– ''बड़ा आया है ब्राह्मण का बेटा! जिन कारतूसों का तुम उपयोग करते हो उन पर तो 'गाय' और 'सुअर' की चर्बी लगी होती हैं, जिन्हें तुम दाँतों से तोड़कर अपनी बंदूक में भरते हो। उस समय तुम्हारा ब्राह्मणत्व और धर्म कहा चला जाता हैं। क्या किसी प्यासे व्यक्ति को पानी पीने के लिये लोटा देने से तुम्हारा धर्म भ्रष्ट हो जायेगा ? धिक्कार हैं तुम्हारे इस ब्राह्मणत्व को।''[18]

यह सुनकर मंगल पांडे चौंक गया। उसने लोटा उस कर्मचारी को पकड़ा दिया और बोला ''तुम भी हिन्दुस्तानी हिन्दू भाई हो तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं। सचमुच तुम सही कह रहे हों। हमारे जैसे गुलामों में ब्राह्मणत्व कहा? गाय जिसे माता कहते हैं, उसकी चर्बी से बने कारतूसों को जाने–अनजाने हम लोग प्रयोग में लाते रहे। आज यदि तुम प्यास से ब्याकुल होकर ताना न मारते, तो शायद मेरी आँखें ही नहीं खुलतीं।''

वह अछूत कोई और नहीं मातादीन भंगी था जिसने हिन्दुस्तानी सिपाहियों की आँखें खोल दी तथा क्रांति के लिए प्रथम चिंगारी बैरकपुर सैनिक छावनी में फूँक दी। पूरी छावनी में मातादीन की बात जंगल में आग की तरह फैल गई।[19]

देखते–देखते क्रांति की ज्वाला में मंगल पाण्डे धधक उठे। 1 मार्च, 1857 को सुबह परेड के मैदान में मंगल पाण्डे लाइन से निकलकर बाहर आ गये। अधर्मी अंग्रेजों को इन बातों के लिए दोषी ठहराते हुए गोलियाँ चलाने लगे और विद्रोह कर दिया। यही वह घड़ी थी, जब क्रांति का सूत्रपात हुआ, और क्रांति की ज्वाला को परवान चढ़ाने में अहम भूमिका अदा कर गई मातादीन की वह चिंगारी। मंगल पाण्डे को गिरफ्तार कर लिया गया और 8 अप्रैल, 1857 को सैनिकों के सामने ही उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।[20] उन्होंने बेमिसाल बहादुरी का परिचय दिया और मौत को गले लगाने में संकोच नहीं किया, लेकिन वर्णाश्रमी चिन्तन में जकड़े हुए मंगल पाण्डे को ललकारने में मातादीन स्वच्छकार और उसकी पत्नी लाजो की अहम भूमिका थी।[21]

मंगल पाण्डे का बलिदान भारतीय सैनिकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। 10 मई, 1857 को बैरकपुर छावनी में क्रांति की लहर दौड़ गई और सम्पूर्ण क्रांति के लिए हिंदू–मुसलमान सैनिकों ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह कर दिया, जिसमें भारत माँ के अनेक सपूतों ने बलिदान दिया और जो लोग गिरफ्तार हुए, उनमें मातादीन भंगी प्रमुख थे, जो बाद में आज़ादी के लिए शहीद हुए।[22] गाय की चर्बी से बनी कारतूस को मुँह से काटने पर तो धर्म बिगड़ता नहीं, लेकिन अगर कोई गैरजाति का व्यक्ति पीने का पानी मांगे तो धर्म ढह जाता हैं। यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। कि मातादीन की इस भूमिका के पीछे उसकी पत्नी लाजो की सक्रियता थी।[23]

उल्लेखनीय है कि मातादीन में यह चेतना कहाँ से आई, वह इतना जागरूक और स्वतंत्रता प्रिय कैसे हुआ। इसकी प्रेरणा उसे अपनी पत्नी लाजो से मिली। लाजो भी अंग्रेजी सैनिकों की छावनी में सफाई का काम करती थी। वह बहुत ही स्वाभिमानी स्त्री थी। लाजो जब भी अंग्रेज अफसर के टेंट में सफाई के लिए आती, वह अधिकारी उससे अभद्र बातें करता। एक दिन लाजो ने उसे हिन्दू धर्म और सतीत्व के बारे में बताया। उसने लाजो से कहा कि–यह दश हमारा गुलाम है। यहाँ के पुरुष जब हमारे गुलाम हैं, तो उनकी औरतें भी हमारी गुलाम हैं, तुम तो जाति से भंगी हो। बामन, बनिए, ठाकुर, राजपूत सभी हमारे दिए गाय की चर्बी से लगे कारतूसों को अपने मुँह से खोलते है। फिर तुम किस धर्म की बात करती हो।[24] अंग्रेज अधिकारी के व्यवहार से आहत लाजो ने पूरे साम्राज्य को हिला देने की ठानी और उसने अंग्रेज अधिकारी के इसी रहस्योद्घाटन को अपना हथियार बनाया।[25] घर आकर उसने अपने पति मातादीन से कहा कि–चाहे जान चली जाए। मैं अंग्रेजों की गुलामी नहीं करूँगी और यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो, तो इस कारतूस की बात जिसमें गाय और सूअर की चर्बी लगी है, पूरी छावनी में सबको बता दो।

मातादीन बोले– इसमें जान जाने का खतरा है। अंग्रेजों को पता चल गया तो मेरे साथ तुम्हारा भी न जाने क्या हाल करेंगे। तुम डरो मत। मैं तुम्हारे साथ ही दस–बीस अंग्रेजों को मारकर मरूँगी। लाजो के स्वर में स्वाभिमान की झलक थी।

जिस दिन मंगल पाण्डे को फाँसी लगी, इस वीर बाला ने अपने पति मातादीन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों से लड़ते हुए शहादत दी। धन्य है वीर–बाला लाजो जो 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम चिंगारी थी।[26]

झलकारी बाई–

बुन्देले हरबोलों ने गढ़ दई थी झूठी काहानी को।

झलकारी रण में जूझी पर गाया लक्ष्मी रानी को।।

रण चण्डी बनकर जो रण में, अंग्रेज़ों पर किलकारी थी।

गोली से छलनी हुई गिरी, वह लक्ष्मी नहीं झलकारी थी।।

सोचो तो, वह बुनकर–बनिता, जो नहीं किसी की रानी थी।

न अटल दुमहलों की वाणी, ना राज काज पटरानी थी।।

जिस देश की आज़ादी की खातिर, निज लहू से धरती को सींचा।

इतिहास के लेखक भुला गया, समझा उसे शूद्र नीचा।

पर आज करवटें बदल रहीं, थातों तो देवी हमारी थी।

गोली से छलनी हुई गिरी, वह लक्ष्मी नहीं झलकारी थी।।[27]

(दलित कवि आचार्य गुरू प्रसाद की कविता)

सन् 1857 के संग्राम में अगर हम देखें तो रानी लक्ष्मीबाई के प्रति मित्रता की अद्‌भुत मिसाल, मातृभूमि की रक्षा का दृढ़ संकल्प और राज्य के प्रति कर्तव्य बोध हमें दलित वीरबाला झलकारी बाई के रूप में मिलता है। जबकि यह न रानी थी और न पटरानी। वह तो मातृभूमि की रक्षा करने वाली स्वतंत्रता की दीवानी थी। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में कोरी समाज की वीरांगना झलकारी बाई ने बुन्देलखण्ड और दलित समाज ही नहीं, सारे महिला समाज को गौरवान्वित किया था। एक समय ऐसा आया जब झाँसी की रानी ने सवर्णों के साथ काछी, कोरी, तेली आदि सभी वर्गो के लोग–लुगाइयों को अपनी सेना में ाामिल किया था। झलकारी, बाई, महारानी लक्ष्मीबाई की नारी सेना 'दुर्गा–दल' की कमांडर

(सेनापति) थी।[28] लक्ष्मीबाई की आन–बान और शान की रक्षा का उत्तरदायित्व उसी पर था। झलकारीबाई एक ऐसी वीरांगना थी, जिसने अपनी वीरता और त्याग के कारण कुल, राज्य एवं देश का नाम रौशन किया। वह इतिहास में अल्प–ज्ञान होते हुए भी इतिहास पुरुष थी।[29]

झलकारी का जन्म 22 नवबर, 1830 को झाँसी के निकट भोजला ग्राम में एक बुनकर एवं कृ ाक परिवार में हुआ था। वह झाँसी राज्य के एक वीर कृ ाक सदोवा मूलचन्द्र की पुत्री थी।[30] उसके पिता सेना में कार्यरत थे। उसकी माता का नाम धनियाँ बाई था। वीरत्व के गुण उसे विरासत में मिले थे।[31] दुर्गादल का नेतृत्व कुश्ती, घुड़सवारी और धनुर्विद्या में माहिर झलकारी के हाथों में था। झलकारीबाई ने कसम उठाई थी कि ''जब तक झाँसी स्वतंत्र नहीं होगी, न ही मैं श्रृंगार करूँगी और न ही सिंदूर लगाऊँगी।'' अंग्रेजों ने जब झाँसी का किला घेरा तो झलकारीबाई जोशो–खरोज के साथ लड़ी।[32]

अंग्रेजों की कुदृष्टि पूरे भारतवर्ष पर थी। झाँसी एक सशक्त राज्य था, वे उस पर भी अधिकार करना चाहते थे। दत्तक पुत्र को अंग्रेजों ने अस्वीकार कर दिया है इसलिए 7 मार्च सन् 1854 की आज्ञा के अनुसार झाँसी का राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया जाता हैं। गवर्नर जनरल का यह फरमान लेकर मेजर एलिस एक दिन महारानी के दरबार में आये। यह समाचार सुनते ही झाँसी में असंतोष की लहर ब्याप्त हो उठी, महारानी ने कहा–''मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।'' झलकारी यह समाचार सुनते ही सिंहनी–सी गरज उठी और अपनी नारी सेना को सम्बोधित करते हुए कहा–''झाँसी की बहादुर बहनों! फिरंगियों ने हमारी झाँसी को अपने अधिकार में करने की ठान ली हैं, हम ऐसा नहीं होने देंगे। हम अन्तिम सांस तक लड़ेंगे। फिरंगी कहते हैं झाँसी की औरतें शैतान हैं वे तोप चलाती हैं बन्दूक चलाती है, मोर्चा संभालती हैं, वे तीरन्दाज और गोलन्दाज हैं, वे हमारी स्त्री सेना से घबराते हैं। बहनों हम रक्त की अंतिम बूँद तक अपने राज्य की रक्षा के लिए लड़ेंगे और अपनी महारानी के लिए अपनी जान दें देंगे, किन्तु पीछे नहीं हटेंगे।''[33]

अंग्रेज सेना ने झाँसी के किले को घेर लिया। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा।[34] झलकारीबाई के पति पूरन कोरी तथा भाऊ बख्शी कोरी सेना के साथ अंग्रेजों का संहार कर रहे थे। परन्तु झलकारीबाई चिन्तित थी कि कहीं रानी अंग्रेजों की गिरफ्त में ना आ जाएँ क्योंकि राव दूल्हाजू और पीर अली जैसे देशद्रोही की सहायता से अंग्रेज किले में घुस गये थे। ऐसी नाजुक स्थिति में झलकारीबाई ने रानी को मंत्रणा दी कि वह अंग्रेजों के हाथ न आये, वरना अंग्रेजों के मनसूबे कामयाब हो जायेंगे। रानी ने भी सुरक्षित स्थान पर जाने की इच्छा प्रकट की। तब झलकारी बाई ने अपने विश्वसनीय सैनिकों के साथ रानी लक्ष्मीबाई को असुरक्षित किले से बाहर निकालकर सुरक्षित स्थान पर भेजने में मदद की।[35]

झलकारीबाई का चेहरा और व्यक्तित्व काफी कुछ रानी लक्ष्मीबाई से मिलता था। जो उस समय मूल्यवान सिद्ध हुआ। किले में झलकारी बाई, रानी लक्ष्मीबाई बनकर युद्ध करती रहीं ताकि रानी दूर सुरक्षित स्थान पर पहुँच जायें। उनका मुख्य उद्देश्य था अंग्रेजों को सारे दिन लड़ाई में उलझाये रखना[36] झलकारी की यह योजना सफल रही और अंग्रेज उसे रानी समझकर युद्ध करते रहे। झलकारी बाई के रण–कौशल से चारों ओर त्राहि–त्राहि मच गई। ह्यूरोज की सेना के पैर उखड़ गये उसने अपने साथी और झाँसी के देशद्रोही पीरअली और राव दुल्हाजू को बुलवाया।[37] उसने ह्यूरोज को बताया कि वह जिसे रानी लक्ष्मीबाई समझ रहे हैं, वह लक्ष्मीबाई की नारी सेना की कमांडर झलकारीबाई हैं। झलकारीबाई ने दूल्हाजू पर गोली चला दी परन्तु गोली उसे न लगकर एक अंग्रेज सैनिक को लगी और उसकी मृत्यु हो गयी, उन्होंने झलकारी को गिरफ्तार कर लिया।[33]

जनरल ह्यूरोज ने कहा– ''तुम रानी बनकर हमको धोखा दिया और तुम हमारे एक सैनिक को गोली मारा। हम तुमको गोली मार देगा।''[39]

झलकारी चिल्लाकर बोली– ''अरे मार दे गोली, मैं तैयार हूँ। अगर तुम सचमुच मर्द हो तो मेरी हथकड़ियाँ खोल दो। तुम में पुरूषों वाली मान–मर्यादा नहीं हैं। एक स्त्री को जकड़ा हुआ हैं। तुम में दम नहीं कि भारत की नारी से

लोहा ले सको। बनते हो बहुत बहादुर, प्रवीण और प्रशिक्षित सैनिक। बेगैरत हो तुम! केवल फूट डालकर राज करने चले हो इतिहास क्या तुम्हें कभी माफ करेगा।''[40]

एक अन्य अंग्रेज अफसर ने कहा–''शी इज मैड''

तब जनरल ह्यूरोज ने कहा,''यदि भारत की एक प्रतिशत नारियाँ इसी प्रकार पागल हो जाये, तो हम अंग्रेजों को हिन्दुस्तान में अपना सब कुछ छोड़कर जाना होगा।[41]

झलकारी अपनी रानी को अंग्रेजों के हाथ में नहीं आने देना चाहती थी। वह अवसर पाकर वहाँ से भाग निकली और किले में पहुँच गई। जनरल ह्यूरोज ने झाँसी के किले पर आक्रमण कर दिया। ह्यूरोज ने झलकारी को तोपची के पास खड़ी होकर गोलियाँ चलाते हुए देख लिया। उस पर गोलियों की वर्षा की गई।[42] दुर्भाग्य से गोली उसके पति पूरनसिंह को लगी और वह गिर पड़ा। पति को गिरा देखकर भी झलकारी ने साहस नहीं खोया और स्वयं तोप का संचालन प्रारम्भ कर दिया।[43] पति के चरणों को स्पर्श कर बिजली की तरह उछलकर घोड़े पर सवार हो अंग्रेज सेना पर घायल शेरनी की भाँति टूट पड़ी। अंततः अंग्रेज सिपाही और सेना अधिकारी झलकारीबाई के हाथों मारे गये, पल भर में अंग्रेज सेना के पैर उखड़ गये, झलकारीबाई अंग्रेजों के लिए मौत की आँधी बन चुकी थी तभी एक सनसनाती गोली उसके सीने को चीरती हुई आर–पार हो गयी और वह घोड़े से जमीन पर गिर पड़ी। गिरते ही उसका शरीर सैकड़ों गोलियों से छलनी हो गया और वह 'जय भवानी' कहती हुई ाहीद हो गई। उसका बलिदान सार्थक सिद्ध हुआ।[44]

यह झलकारीबाई ही थी जिसने लक्ष्मीबाई को अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ भांडेरी फाटक से बाहर निकालकर बचाया। लिखित भारतीय इतिहास के लिए अंजान रही, झलकारी बाई बुन्देलखण्ड की लोक कथाओं में लगातार जिन्दा रहीं।[45] हिन्दू धर्म के मनुवादी लेखकों, जिसमें ब्राह्मणों का वर्चस्व हैं, ने उनके बलिदान पर दो शब्द लिखना भी उचित नहीं समझा परन्तु बुन्देलखण्ड के नर–नारी इस वीरांगना झलकारीबाई को क्षत्राणी से भी ऊपर मानते हैं।[46]

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में झलकारी बाई का योगदान झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से कम नहीं था।[47] शहीद झलकारीबाई कोरी हुई, अंग्रेजों से लोहा उसने लिया और इतिहास में अमर लक्ष्मीबाई हो गयी।[48] समाज के दलित और पिछड़े कहे जाने वाले वर्ग की ये महिला अगर नहीं होती तो अंतिम लड़ाई में लक्ष्मीबाई महल से बाहर ही नहीं निकल पाती।[49] यह झलकारीबाई की बलिदान शक्ति का परिणाम था कि अंग्रेज लक्ष्मीबाई को तो क्या, उनकी भस्म को भी छू न सके।[50]

वीरांगना झलकारीबाई का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जायेगा? क्योंकि वह दलित समाज की थीं– जिसका न राज्य था, न राजमहल, न वह रानी हो सकती थी और न अधिकारिणी, वे मात्र अपने देश व मातृभूमि भी रक्षा व स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर शहीद हो गई और शहीद का पद पाकर इतिहास में अमर हो गई।[51]

बिहारी लाल हरित की पंक्तियाँः–

खूब लड़ी झलकारी रण में

वह तन–मन अपना वार गयी

गोरों को लड़ना सिखा दिया

इतिहास के पृ ठ सँवार गयी।[52]

ऐसे अपढ़ झलकारी ने

अपने हाथों इतिहास रचा।[53]

ऐसी महान देश–भक्त महिला वीरांगना झलकारीबाई पर समाज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र आज भी गर्व करता हैं और हमेशा करता रहेगा।[54]

जो झलक–झलक दिखा गई, वह झलकारीबाई थी।

जो सबक–सबक सिखा गई, वह झलकारीबाई थी।।

जो कोरी समाज में जन्म पाई थी, वह झलकारीबाई थी।

जो झाँसी को बचाने मातृभूमि पर आई थी, वह झलकारीबाई थी।।

न तो वह रानी थी, न तो वह पटरानी थी।

वह तो सिर्फ मातृभूमि की, दीवानी थी।।

शक्ति की प्रतीक थी, दुर्गा रूप दिखाई थी।

लक्ष्मीबाई को बचाई थी, दूर देश पहुँचाई थी।।

खुद सीने पे गोली खाई थी, शहीद का पद पाई थी।

अपनी छवि बनाई थी, वीरांगना कहलाई थी।।

जो दोस्ती के फर्ज़ को निभाई थी, वह झलकारी बाई थी।

जो जमीं से उठकर आंसमा पे छाई थी, वह झलकारी बाई थी।।

जो जन्म से नहीं कर्म से प्रसिद्धी पाई थी, वह झलकारी बाई थी।

जो लक्ष्मीबाई की शान को बड़ाई थी, वह झलकारी बाई थी।।

जो झलक–झलक दिखा गई, वह झलकारी बाई थी।

जो सबक–सबक सिखा गई, वह झलकारी बाई थी।।

वह झलकारी बाई थी।

वह झलकारी बाई थी।।[55]

महाबीरी देवी

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जिला मुजफ्फरनगर का भी योगदान किसी से कम नहीं हैं, क्योंकि यहाँ की नारियों ने क्रांतिवीरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम में लड़ाई लड़ी थी।[56] अपने देश की रक्षा और स्वतंत्रता के लिए खुशी–खुशी प्राणों को न्यौछावर कर अमर होने वाली वीरांगना महाबीरी देवी जिनका जन्म ग्राम–मुंडभर–भाजू, तहसील–कैरोना, जिला–मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वे जाति की भंगी थीं,[57] अतः उनको शिक्षा का अवसर नहीं मिला, परन्तु उनकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र थी।[58] शौर्यता तथा निर्भीकता

उनकी विशेषता थी। बाल्यावस्था से ही साहसी तथा शक्तिशाली होने के कारण तेज स्वभाव की थी।[59] महाबीरी देवी उस समय पैदा हुई थीं, जब अछूत लोग कुत्ते बिल्ली से भी बदतर अवस्था में थे। महाबीरी देवी अन्याय का डटकर मुकाबला करती थी। उनकी निर्भीकता की चर्चा पूरे क्षेत्र में फैल चुकी थी। महाबीरी देवी के पिता सूप और पंखा बनाते थे।[60]

गाँव के सामन्ती जमींदार या धनी यदि किसी गरीब को सताता अथवा उसका उत्पीड़न करता था, तो वह उन असहाय एवं निर्बलों के लिए बड़े से बड़े व्यक्ति से टक्कर ले लेती थी और उसका डटकर विरोध करती थीं।

महाबीरी देवी ने अपने समाज की नारियों का एक संगठन बनाया जिसका उद्देश्य था–घृणित कार्यों में लगी महिलाओं व बच्चों को उस काम से हटाना। सम्मान के लिए जीना व सम्मान के लिए मरना उनका मूलमंत्र था। धीरे–धीरे उनका यश चारों ओर फैलने लगा। जगह–जगह उनके शौर्य एवं निर्भीकता की चर्चा होने लगी। मानो उन्होंने दीन–दुःखियों के लिये ही जन्म लिया था। उन्होंने जीवनपर्यन्त अन्याय से लड़ने की प्रतिज्ञा ली और अपना जीवन कमजोर और गरीब लोगों की सेवा के लिए समर्पित कर दिया।[61]

महाबीरी देवी का पारिवारिक जीवन बड़ा ही कष्टमय था। गरीबी, बेकारी से पीड़ित होते हुए भी उन्होंने अपने मान–सम्मान पर कभी आँच नहीं आने दी। कभी भी खैरात व जूठन को स्वीकार नहीं किया बल्कि अपनी जाति के लोगों को इसके लिये मना करती थी।[62]

अंग्रेजों ने सन् 1857 के विद्रोह के समय जब मुजफ्फरनगर को अपने अधिकार में लेना चाहा तो महाबीरी देवी ने अपने नारी संगठन के बल पर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। महाबीरी देवी के नेतृत्व में 22 नारियों की एक टोली ने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों को यह उम्मीद नहीं थीं कि महिलाएँ उन पर आक्रमण करेंगी। महिलाओं के हाथ में बल्लम, गंड़ासे थे। इन अछूत महिलाओं द्वारा कई अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया गया।[63] अंग्रेज आश्चर्य चकित रह गये। अनेक अंग्रेज महाबीरी देवी के हाथों मारे गये। अंग्रेजों ने टोली को तीनों तरफ से घेरकर गोलियों की बौछार कर दी। महाबीरी देवी युद्ध

करते हुए 22 महिलाओं सहित शहीद हो गई।[64] इस घटना से सिद्ध होता है कि भारत वर्ष के स्वतंत्रता–प्राप्ति आंदोलन में केवल ब्राह्मणों अथवा सवर्ण जातियों का ही योगदान नहीं था, अपितु अछूत नारियों ने भी इस दश के लिए अपना खून बहाया था।[65] देश के प्रति उनका त्याग और बलिदान समाज के लिए सदैव प्रेरणादायक रहेगा। वीरांगना महाबीरी देवी का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता।

जगरानी पासी–

1857 के संग्राम में पासी जाति की वीरांगना लखनऊ की जगरानी पासी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इस जाति के पुरखे सुरंग उड़ाने में बड़े निपुण थे। अक्सर बेलीगारद वालों को उनसे नुकसान पहुँचता ही रहता था। 10 अगस्त, 1857 को जनरल बरकत अहमद के नेतृत्व में पासी जाति के लोगों को साथ लेकर फौज ने बेलीगारद पर आक्रमण कर दिया। तीन दिन तक घमासान युद्ध होता रहा– बेलीगारद की सुरंगे उड़ने लगीं। रेजीडेंसी में फँसे अंग्रेज भयभीत हो गए। लेकिन इसी बीच कानपुर से मि0 हैवलाक की सेनाएँ लखनऊ सीमा तक तथा दूसरी ओर फैजाबाद से चिनहट तक आ गई थी। बंथरा में उनका मुकाबला स्वयं बेगम हज़रत महल ने किया लेकिन वह जख्मी हो गई और उनके वफादार सेनापति मानसिंह तथा कुंवर जियालाल सिंह उन्हें शहर ले आए।

सिकंदर बाग के पास घमासान लड़ाई हो रही थी। साधारण अछूत परिवार की स्त्रियाँ नगर की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे रहीं थीं। वे स्त्रियां जंगली बिल्लियों की तरह लड़ रही थीं और उनके मरने के पहले किसी को यह पता नहीं चला कि वह स्त्रियां हैं या पुरूष। सिंकदर बाग में सेमर के वृक्ष के नीचे जिस महिला ने अनेक अंग्रेजों को मार गिराया, वह महिला उजरियाँव की थी और उसका नाम जगरानी था। जगरानी जाति की पासी थी। अंत में जगरानी भी गोली से घायल होकर इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुई। दुर्भाग्यवश बेलीगारद की क्रांति विफल हो गई और उसमें 220 देशभक्त शहीद हुए। 150 लोग घायल हुए जिसमें अधिकांश पासी जाति के नौज़वान थे। जगरानी के अपूर्व शौर्य, साहस और बलिदान को भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।[66]

अवन्तीबाई लोधी–

''देश की रक्षा करने के लिए या तो कमर कसो या फिर चूड़ियां पहनकर घर में बैठ जाओं। तुम्हें धर्म और ईमान की सौगंध हैं जो इस कागज की पुड़िया का पता बैरी को दो।''–ये शब्द हैं सन् 1857 के विप्लव की क्रांतिकारी वीर–बाला रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई के।[67] अवन्तीबाई लोधी 1857 के आंदोलन के प्रमुख सूत्रधारों में से एक थीं।[68]

महान विभूति अवन्तीबाई का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में धरोहर के रूप में अंकित होते हुए भी जन साधारण तक पूर्णतः उजागर नहीं हो पाया हैं। रानी अवंतीबाई के बारे में मध्य प्रदेश शासन द्वारा प्रकाशित– ''मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास'' में लिखा है कि ''मंडला जिले के वीर–नायकों में रामगढ़ की रानी भी थी, यद्यपि वह झाँसी की रानी से कम प्रख्यात है। लेकिन उसने अपनी मातृभूमि के प्रति जिस प्रेम तथा शौर्य का प्रदर्शन किया उसके कारण उसे हमारे देश की महानतम् वीर–बालाओं में स्थान मिलना चाहिए।''

एस0आर0आर0 रडमैन द्वारा संपादित 'मंडला गजेटियर' में वर्णित युद्धों में रामगढ़ की रानी के शौर्य–पराक्रम और रणकुशलता का विस्तार से वर्णन किया गया हैं। जी0एन0 सील कृत 'मध्य प्रदेश और बरार का इतिहास' में उनके शासनकाल को स्वर्णयुग की संज्ञा दी गई हैं। डॉ0 आर0एम0 सिन्हा की 'जबलपुर जिले में 1857' आदि पुस्तकें उनकी वीरता के अविस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।[69]

मध्य प्रदेश के सिवनी जिले के राव जुझारू सिंह और रानी सुमित्रा के यहाँ 16 अगस्त, 1831 ई0 को एक कन्या ने जन्म लिया जिसका नाम 'मोहिनी' रखा गया। 1848 ई0 को 17 वर्ष की आयु में मोहिनी का विवाह रामगढ़ के राजा लक्ष्मण सिंह के पुत्र विक्रमादित्य के साथ हुआ। रामगढ़ 14 परगनों वाला चार हजार वर्ग मील में फैला राज्य था। ससुराल में मोहिनी को 'अवन्तीबाई' नाम दिया। विवाह के बाद वे बिना पर्दा किए ही पति के साथ राज्य का भ्रमण करती और राज्यकार्य में हाथ बँटाती थी। अवन्तीबाई ने अमान सिंह और शेरसिंह नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। लक्ष्मण सिंह की मृत्यु के बाद विक्रमाादित्य रामगढ़ के

राजा बने।[70] गद्दी पर बैठने के कुछ दिनों बाद अर्द्धविक्षिप्त हो जाने के कारण विक्रमाजीत सिंह मई 1857 को काल कवलित हो गए। उनके आकस्मिक निधन पर उनके नाबालिग पुत्रों–अमान सिंह और शेरसिंह में से अमान सिंह को गद्दी पर बैठाया गया और रानी अवन्तीबाई ने शासन–प्रबंध का संचालन स्वयं किया, परन्तु अंग्रेजों ने इस राज्य को 'कोट ऑफ वॉर्डर्स' के अधीन करके वहाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रेजिडेंट नियुक्त कर दिया।[71] अंग्रेजों ने राजकीय परिवार के सदस्यों के लिए पेंशन बांध दी। रानी ने कई बार विरोध में अपनी आवाज उठायी परन्तु कोई फल न निकला।[72]

सन् 1857 की क्रांति का बिगुल बजने पर उन्हें बदला लेने का अवसर मिल गया।[73] अतः अपने स्वाभिमान तथा राज्य की स्वाधीनता की रक्षार्थ रानी अवन्ती बाई भी अपने देश–प्रेमी राज्यभक्त साथियों के साथ स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ी।[74] जब 1857 की राज्य क्रांति की पूर्व बेला में सारे उत्तर भारत में क्रांति का प्रतीक लाल कमल तथा रोटी गाँव–गाँव भेजी जा रही थी, तो अवन्तीबाई ने उसे स्वीकार किया।[75] रानी ने मध्य प्रदेश के राजाओं और जागीरदारों को भी अंग्रेजों की कूटनीति से अवगत कराया और उन्हें भी स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित होने के लिए तैयार किया।[76] रानी ने अपनी तरफ से पद्मिनी के वंशज और पुरवा के शंकरशाह, उमरी के उमराव सिंह, सुकरीवर्गी के बहादुर सिंह, बड़खेरा के जगत सिंह, हिंडोरिया के किशोर सिंह आदि जमींदारों के पास कागज की पुड़ियाँ भिजवाई। इन लोगों ने रानी की योजना को हृदय से स्वीकार किया। पुड़ियों में चूड़ियों के टुकड़े थे। इस प्रकार रानी के देशभक्ति पूर्ण कोमल व्यवहार तथा जन–सेवा ने जनता का दिल जीत लिया। उनकी सेना के तथा अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिक गुप्त रूप से आत्मविभोर होकर यह गीत गाते थे–

दुर्गा मैया खड़ग खींच के आओ

बैरी को मार भगाओ।

बहुत दिनन से तड़प रहे हैं,

अब आकर लाज बचाओ।।

रानी की लोकप्रियता इससे प्रमाणित होती हैं कि अंग्रेजों के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर प्रजा रानी के पैर पकड़कर कहने लगी थी कि ''हम तो युगों सताए हुए हैं, अब मिली है हमारी रक्षक। हमारे भाग्य ने हमारे पेट काटे और चिथड़ों का कर दिया अंत, अब लौटा हैं, हमारा भाग्य। हम अपनी रानी के लिए अपने टुकड़े–टुकड़े करा सकते हैं।''[77]

जब अंग्रेजों ने रानी के सहयोगी साथी पुरवा के राजा शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथशाह को बंदी बनाकर तोप से उड़ा दिया और उनका 'मंडला राज्य' छीनकर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस घटना ने रानी अवन्तीबाई को झकझोर कर रख दिया।[78] रानी ने इन लोगों की हत्या की खबर सुनकर कहा–''महारानी दुर्गावती के वंशज दोनों योग्य पुरुष तोप के मोहरे से उड़ा दिए गये, हम उन्हीं के किसी पराक्रमी वंशज को अपना नेता चुनेंगे।'' जब सैनिकों ने कहा कि रानी जी हम लोग आपके नाम पर युद्ध जारी रखेंगे। तब रानी ने उत्तर दिया–''मेरे नाम पर नहीं, देश के नाम पर राजा शंकरशाह के नाम पर लड़ूँगी और फिरंगियों के दाँत खट्टे करके ही मरूँगी, देह में एक भी बूँद रक्त जब तक रहेगा। इन फिरंगियों से लड़ूँगी, न चैन लूँगी न चैन लेने दूँगी।''

सी0यू0 विल्स ने अपनी पुस्तक ''सतपुड़ा पर्वत श्रेणी के राजगोंड महाराजाओं का इतिहास'' में लिखा हैं– '' जब शंकरशाह के मृत्युदण्ड का समाचार मंडला जिले में पहुँचा तो रामगढ़ की रानी ने विद्रोह कर दिया। रामगढ़ राजगोंड महाराजाओं के राज्य में एक अधीन राज्य था। रानी ने सरकारी अफसरों को निकाल भगाया, उनसे रामगढ़ छीन लिया और अपने पुत्र के नाम पर शासन करने लगी।''[79] जब जबलपुर के कमिश्नर को यह समाचार मिला तो वह आतंकित हो उठे। उन्होंने रामगढ़ की रानी को पत्र लिखकर मंडला के डिप्टी कलेक्टर से मिलने का आदेश दिया। विद्रोही रानी पर इस आदेश का कोई प्रभाव नही पड़ा। उन्होंने पूर्ण उत्साह के साथ युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। उन्होंने रामगढ़ के किले की मरम्मत करवाई तथा आस–पास के राजाओं के विरूद्ध सहायता मांगी। इन गतिविधियों से अंग्रेज आतंकित हो उठे।[80]

इधर वाशिंगटन ने लेफ्टिनेंट वार्टन, काकवन, जनरल निटलाक तथा रीवा नरेश से सैनिक सहायता लेकर अपनी शक्ति बढ़ा ली और 15 जनवरी, 1858 को थुथरी पर अधिकार करते हुए रामगढ़ की ओर प्रस्थान किया।[81] किले को घेर लिया गया। रानी को आत्मसमर्पण के लिए संदेश भेजे गए, परन्तु वह किले से बाहर निकलकर युद्ध मैदान में आ डटी। उन्होंने स्वयं सेना का संचालन किया। उनकी ललकार व युद्ध क्षमता देखकर अंग्रेज दंग रह गए। अंग्रेज सेना को पीछे लौटना पड़ा। वांशिंगटन ने दूसरी बार पहले से अधिक सेना लेकर आक्रमण किया। इस बार भी रानी खूब बहादुरी से लड़ीं। हजारों की संख्या में ब्रिटिश सैनिक मारे गए, शेष मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। इस भगदड़ में वाशिंगटन का लड़का भी खो गया।[82] रानी को जब बच्चे का पता लगा तो उसने मानवता और मातृत्व भावना से प्रेरित होकर उसे कैप्टन वाशिंगटन के पास पहुँचा दिया। रानी ने मंडला पर पूर्णाधिकार कर लिया।

31 मार्च, 1858 को वाशिंगटन ने फिर रामगढ़ के किले पर आक्रमण कर दिया। तीन दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा, किन्तु वाशिंगटन लाख कोशिश करने पर भी किले में प्रवेश न कर सका। तब उसने किले के चारों ओर से नाकेबंदी कर दी जिससे किले के अन्दर भोजन तथा जल आदि की समस्या उत्पन्न हो गई।[83] रानी को आशा थी कि रीवा राज्य उनकी सहायता करेगा, परन्तु वह रियासत अंग्रेजों से मिल गई। रानी हतोत्साहित नहीं हुई। वह रणचडिका बनकर सिपाहियों को प्रेरणा देती रहीं, किन्तु अंत में उनकी पराजय हुई।[84] विवश होकर रानी को किला छोड़ना पड़ा। अंग्रेज सेना ने किले को ध्वस्त कर शाही खजाना लूट लिया। रानी ने भागकर देवगढ़ के जगलों में शरण ली। रानी को आत्म समर्पण करने के लिए संदेश भेजा गया जिसे रानी ने अस्वीकार कर दिया।[85] जब उनका अंग्रेजों की गिरफ्त में आना निश्चित हो गया तो रानी ने देश की गौरवशाली परम्परा के अनुरूप अपने आत्म–सम्मान की रक्षा के लिए उमराव सिंह से तलवार लेकर अपने पेट में घोंपकर आत्मघात कर लिया। मृत्यु के समय उस वीर रानी ने स्वीकार किया कि –[86] "इस विद्रोह के लिए मैं स्वयं जिम्मेवार हूँ। मैं ही सैनिको को भड़काकर युद्ध के लिए तैयार किया, वे स्वयं

विद्रोही नहीं बने। उनको कोई दंड न दिया जाये।'' और इतिहास की इस महान देवी की आँखें सदा के लिए बंद हो गई।

ईमानदारी, निष्ठा और देश भक्ति के लिए बलिदान होने वाली रामगढ़ की इस बहादुर रानी की यह वीर–गाथा भी रानी लक्ष्मीबाई की शौर्य–परम्परा की एक कड़ी है।[87] अवंतीबाई की अविस्मरणीय भूमिका की छाप हमारे दिलों में अमिट रहेगी।[88] महारानी अवन्तीबाई सदा के लिए देश पर मिटने वाले शहीदों के साथ अमर हो गई।[89]

ऊदा देवी पासी–

वीरांगना ऊदा देवी पासी 1857 की यह बहादुर सेनानी एक लम्बे अरसे तक गुमनामी के अंधेरे में, 'अज्ञात वीरांगना' के रूप में याद की जाती रही। पिछड़े और दलित वर्गों के उभरने के बाद ही ऊदा देवी के नाम से इस वीरांगना की पहचान हुई।[90] ऊदा देवी के शौर्य और पराक्रम से पूरे स्वतंत्रता–संग्राम को एक नई गरिमा मिलती हैं। ऊदा देवी अवध के छठे बादशाह नवाब वाजिद अलीशाह की बेगम हजरत महल की 'महिला सैनिक दस्ते' की कप्तान थीं।[91] वाजिद अलीशाह ने अपनी पलटनों को तिरछा रिसाला, गुलाबी, दाऊदी, आबूनसी और 'जाफरी' जैसे नाम दिए थे और इन फूलों के रंग की ही उस पलटन की वर्दी तैयार की गई थी। बाद के दिनों में इन रंगों पर एक काली वर्दी पहनना अनिवार्य कर दिया गया था। अंग्रेज सार्जेट फार्ब्स मिशल ने सबसे पहले सिकन्दरबाग में पीपल के पेड़ पर बैठी एक ब्लैक कैट का जिक्र किया हैं जिसने एक–एक कर अंग्रेजी सेना के 36 लोगों को मार गिराया।[92]

ऊदादेवी का विवाह गोमती के किनारे बसे उजिरियांव गाँव के निवासी मक्का पासी से हुआ था। महिला बटालियन की नेता ऊदा देवी ने 16 नवम्बर, 1857 को लखनऊ के सिकन्दरबाग में अकेले अपने दम पर अंग्रेज सैनिक अफसरों को मार गिराकर जिस वीरता का प्रदर्शन किया। उससे अंग्रेज चकित रह गये थे। सन् 1857 में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ विरोध का बिगुल फूके जाने के बाद रेजीडेन्सी में फँसे फिरंगियों को बचाने के लिये हेनरी लारेन्स के स्वागत

में फैजाबाद से आयी अंग्रेजों की फौंज को मक्का और उनके साथ मौजूद 200 पासी वीरों ने चिनहट के पास चुनौती दी थी। चिनहट में हुए संघर्ष में मक्का पासी और उनके साथी शहीद हुए थे। पति की मौत का बदला लेने के लिये ऊदा देवी 16 नवम्बर, 1857 लखनऊ शहर के बीच स्थित सिकन्रबाग पहुँची। चुस्त लाल रंग की जैकेट और गुलाबी रंग की रेशमी पतलून पहने ऊदादेवी ने एक धने पेड़ की डाल पर अपना मोर्चा बनाया था, जो भी अंग्रेज उस पेड़ के नीचे से या आस–पास से गुजरता था, वह ऊदा देवी की गोली का निशाना बन वहीं ढेर हो जाता था। कुछ देर बाद अंग्रेजों की फौज की 53वीं व 63वीं बटालियन के सैनिक पानी पीने के लिये इस पेड़ के नीचे पहुँचे तब वीरांगना ऊदादेवी ने एक–एक सैनिकों को मारते हुए कुल 36 अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। पीपल का वह पेड़ सिकन्दरबाग में आज भी मौजूद है और ऊदा देवी के खामोश बलिदान का अकेला मूक साथी है। ब्रिटिश फौज के सार्जेन्ट फोवेंस ने अपनी पुस्तक ''रेमीनी सेन्सेज आफ दी ग्रेट म्यूटिनी'' में इस घटना का उल्लेख किया है एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है कि –''सिकन्दर बाग में एक पीपल के वृक्ष के ऊपर एक महिला जो गुलेनरी घाघरा और धानी दुपट्टा पहने थी, बेतहाशा गोली बरसा रही थी।''

काफी देर के बाद जब अंग्रेज सैनिकों की वापसी नहीं हुई तो उनकी तलाश में कैप्टन जानसन और क्योकर बैलस सिकंदर बाग के जंगल में पहुँचे तो वहाँ सैनिकों की ढेरों लाशें देखकर दंग रह गये। सभी अंग्रेजों के सिर अथवा कंधे पर ही गोली लगी थी। जब कैप्टन जानसन का ध्यान इस ओर गया कि पेड़ के नीचे जाते ही अंग्रेज गोली का शिकार हो जाते हैं। तो उसने पेड़ पर से जिधर से गोली आती थी, उस दिशा में गोली चलाने का बैलेस को आदेश दिया। बैलेस की गोली निशाने पर लगी। गोली लगने से पेड़ से गिरे व्यक्ति के पास पहुँचने पर पता चला कि वह तो एक महिला है। वह लिखता है कि उसके बेल्ट के कारतूस खत्म हो गये थे और एक भी कारतूस होता तो मुझे भी मारने में सफल हो जाती। उसने अपने वतन की आजादी के लिए सैनिक वेश धारण किया था और जब तक जीवित रही गिन–गिन कर अंग्रेजों को ठिकाने लगाती रही। मेजर डासन ने महिला वीरांगना की शौर्य वीरता को देखकर और हैट उतारकर,

सिर झुकाकर सैल्यूट कर शहीद वीरांगना का सम्मान किया और कैप्टन बैलेस ने आँसू बहाते हुए कहा कि ''अगर मैं यह जानता की वह एक महिला वीरांगना हैं, तो मैं कभी गोली नहीं चलाता, चाहे ही उससे सैकड़ों सैनिक और मर जाते।''[93]

जी0बी0 मालेसन 'इंडियन म्युटिनी ऑव 1857' में लिखते है कि उस दिन यह जगह रक्त का विशाल सरोवर बन गई थीं। 'लेटिनेंट कर्नल गार्डेन एलेक्जेंडर ने लिखा–''सिकदंरबाग को बचाने के लिए इस शहर की महिलाएँ जंगली बिल्लियों की तरह झपट–झपट कर अंग्रेजों से लड़ रही थीं। इन महिलाओं का नेतृत्व वीरांगना ऊदादेवी कर रहीं थीं।''

श्री आर0के0 चौधरी, कहते हैं 'लंदन टाइम्स' के संवाददाता विलियम हावर्ड रसेल 'माई डायरी इन इण्डिया 1857–1859' में लिखते हैं– ''सिकन्दरबाग की महिलाओं के शौर्य के कई प्रमाण मिलते हैं। एक स्त्री द्वारा अंग्रेजों पर फायरिंग की रपट उन्होंने लंदन भेजी थी। इस रपट को कार्ल मार्क्स और फेडरिक एंगेल्स ने भी पढ़ा। इसका जिक्र इन लोगों ने अपनी पुस्तकों में किया हैं''।[94]

ऊदादेवी 36 अंग्रेजों को एक साथ मारकर शहीद हुई थीं। यह शहीद वीरांगना देश की एक ऐतिहासिक धरोहर हैं। 16 नवम्बर, 1857 को सिकंदर बाग के समर में शहीद हुई यह वीरांगना ऊदादेवी पासी थी। सिकंदरबाग चौराहा लखनऊ में ऊदा देवी की प्रतिमा स्थापित कर अवध की जनता ने अपनी इस 'शहीद वीरांगना' को नमन किया और श्रद्धांजलि अर्पित की है ।[95]

नन्हीबाई–

नन्हीबाई का योगदान भी स्वतंत्रता आंदोलन में स्मरणीय हैं, क्योंकि वह जिस समाज से थी, उस समाज से हम स्वतंत्रता आंदोलन में संघर्ष के लिए सोच भी नहीं सकते थे। भगतन जाति के लोग वैष्णव संप्रदाय के मानने वाले थे पर उनकी कन्याओं की शादी नहीं होती थी। उनकी शादी किसी साधु के साथ कराकर उन्हें वेश्यावृत्ति में उतार दिया जाता था। यह समाज भी ब्राह्मणी व्यवस्था का शिकार था।[96] नन्हीबाई ने इसी भगतन जाति में भगतन नाम की एक वेश्या की कोख से जन्म लिया था। उसका विवाह एक साधु यमुनादास से करवाकर उसे वेश्यावृत्ति में उतार दिया गया। उसकी सुंदरता के बारे में सुनकर जोधपुर

के राजा जसवंत सिंह ने उसे अपने यहाँ बुलवाया और उसे अपने महल में रख लिया। महर्षि दयानंद सरस्वती ने नन्हीबाई को जोधपुर के राजा के साथ देखकर यह टिप्पणी की कि –''सिंहों के सिंहासन पर इन कुतियों से कुत्ते ही पैदा होंगे।''[97] नन्हीबाई सुनकर अपमान एवं क्रोध का घूँट पी कर रह गई।

कालांतर में नन्हीबाई ने समाज सेवा का व्रत लिया और अपनी अपार धन–संपदा को देश की सेवा में लगा दिया। यद्यपि नन्हीबाई पर दयानंद सरस्वती को मारने का आरोप लगा था। नन्हीबाई ने लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज के साथ–साथ अनेकों संस्थानों को अपनी सम्पत्ति बेचकर दान दिया। अंग्रेजों से उनकी बहस होती ही रहती थी। क्रांतिकारियों की मदद करना वह अपना धर्म समझती थी क्योंकि एक वेश्या होने के नाते स्वतंत्रता के मायने वह बखूबी जानती थी ।[98]

1857 के संग्राम में दलित महिलाओं की हिस्सेदारी यहीं तक सीमित नहीं थी। दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा के अनुसार देश की आज़ादी के संघर्ष के दौरान मुजफ्फरनगर की ग्रामीण महिलाओं ने भी पुरू ाों के साथ मिलकर अंग्रेजों का विरोध किया तो उन्हें फाँसी पर लटकाया गया। वीरगति प्राप्त उन महिलाओं में भगवानी, राजकौर, रणीबीरी और शोभा देवी के नाम हमें उस समय के रिकार्ड से मिले हैं। इसी तरह मेरठ क्रांति के समय गुड़गाँव की जिन महिलाओं ने भाग लिया व फाँसी पर लटकाई गई, उनमें नागली की रत्ना और पलवल की मानी थी। इसी तर जौनपुर में क्रांतिकारियों की सहायता के अपराध में मेहरी और माही को फाँसी की सजा दी गई। साथ ही दिल्ली की गन्नो को क्रांति में भाग लेने के अपराध में फाँसी की सजा मिली।[99]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लगभग हर जाति वर्ग तथा धर्म की महिलाओं ने भाग लिया था, परन्तु कुछ महिलाओं को ही केन्द्रित किया गया, जैसे–बेगम हज़रत महल और रानी लक्ष्मीबाई।[100] स्वतंत्रता संग्राम में सैकड़ों दलित महिलाएँ शहीद हुई जिन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित किया। इसमें महाबीरी देवी, नन्हीबाई, अवन्तीबाई, झलकारीबाई, ऊदा देवी इत्यादि प्रमुख हैं, जिन्होंने अंग्रेजों से संघर्ष करते–करते प्राण न्यौछावर किए।[101]

अतः 1857के संघर्षपूर्ण इतिहास की प्रस्तुति उस तरह से नहीं हुई जैसे कि होनी चाहिए थी। इतिहासकारों द्वारा दलितों के पक्ष को हमेशा से ही अंधकार में रखा गया परन्तु अब इतिहास पर पुनः शोध और तर्कपूर्ण विश्लेषणकरने के दिन आ गए हैं। अतः दलितों के गौरवपूर्ण इतिहास को उजाले में लाना ही होगा।

"ऐ इतिहासकारों यह तुमने क्या कर दिखलाया।

अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति को दर्शाया।।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।।

सच को छुपाया, झूठ का परचम लहराया।

दलित को गिराया, सवर्ण को चमकाया।।

किसी को आसमाँ पे बैठाया।

किसी को कदमों तले दबाया।।

किसी के नाम को इतना चमकाया।

किसी का नामो–निसा मिटाया।।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।।

इतिहास का अतीत किस रूप में दर्शाया।

सत्य क्यों नहीं समाज के समकक्ष आया।।

जात–धर्म को क्यों तुमने आधार बनाया।

मानव–धर्म क्यों नहीं तुमने अपनाया।।

ऐ इतिहासकार कहाँ तु न्याय करपाया।

अन्याय ही अन्याय दर्शाया।।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।

यह कौन–सा इतिहास रचाया।।[102]

❐

सन्दर्भ –

1. *साम्या, अंकः अप्रैल–सितम्बर 2007, पृ ठ–31*
2. *इतिहासबोध, वर्ष–19, अंक–61, फरवरी 2008, पृ ठ–27*
3. *उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष–34, अंक–12, अगस्त, 2007, पृ ठ–75*
4. *शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–7*
5. *साम्या, अंकः अप्रैल–सितम्बर, 2007, पृ ठ–336. उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष–34, अंक–12, अगस्त, 2007, पृ ठ–75*
7. *आशारानी व्होरा, महिलाएँ और स्वराज्य, द्वितीय संस्करण, 1999, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–51*
8. *इतिहासबोध, वर्ष–19, अंक–61, फरवरी, 2008, पृ ठ–27*
9. *मंजु सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–206*
10. *डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–13*
11. *आजकल, वर्ष–63, अंक–1, मई 2007, पृ ठ–67*
12. *गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–91*
13. *डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–16*
14. *आजकल, वर्ष–63, अंक–1, मई 2007, पृ ठ–68*
15. *मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–205*
16. *गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–93*
17. *डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–46*
18. *गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–92*
19. *मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–211–212*
20. *डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–47*
21. *उद्भावना, वर्ष–23, अंक–75, अप्रैल–जून, 2007, पृ ठ–274–275*
22. *डी0सी0, डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–47*
23. *उद्भावना, वर्ष–23, अंक–75, अप्रैल–जून, 2007, पृ ठ–275*
24. *मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–212–213*
25. *गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–179*
26. *मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–213*

27. दलित आन्दोलन के प्रेरणा प्रतीक बाबूलाल चाँवरिया, राजस्थान, 2005, दलित अधिकर कारवाँ प्रकाश्न, पृ ठ–33
28. गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–93
29. 'अनु' अनुसूया, झलकारी बाई, फरवरी, 1993, नई दिल्ली, प्रकाश्न विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–23
30. स्याल, शान्ति कुमार, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–79
31. उर्मिला, अंक–24, 2007, लखनऊ, पृ ठ–21
32. इतिहासबोध, वर्ष–19, अंक–61, फरवरी 2008, इलाहाबाद, पृ ठ–28
33. उर्मिला, अंक–24, 2007, लखनऊ, पृ ठ–22
34. विश्वामित्र उपाध्याय, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, भाग–2, अगस्त 1990, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ–14
35. आजकल, वर्ष–63, अंक–1, मई 2007, पृ ठ–68
36. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007 दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–40
37. 'अनु' अनुसूया, झलकारी बाई, फरवरी, 1993, नई दिल्ली, प्रकाश्न विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–13
38. वही पृ ठ–16
39. उर्मिला, अंक–24, 2007, लखनऊ, पृ ठ–23
40. 'अनु' अनुसूया, झलकारी बाई, फरवरी, 1993, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–16
41. समयांतर, वर्ष–38, अंक–5, फरवरी 2007, पृ ठ–59–60
42. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–81
43. विश्वामित्र उपाध्याय, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, भाग–2, अगस्त 1990, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ–16
44. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–40–42
45. उद्भावना, वर्ष–23, अंक–75, अप्रैल–जून, 2007, पृ ठ–275
6. एन. सिंह, सुश्री मायावती और दलित चिंतन, प्रथम संस्करण, 2007, गाजियाबाद, साहित्य संस्थान, पृ ठ–149
47. साम्या, अंकः अप्रैल–सितम्बर, 2007, प भठ–31
48. देवेन्द्र चौबे, 1857 भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, प्रथम संस्करण, 2008, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, पृ ठ–248
49. साम्या, अंकः अप्रैल–सितम्बर, 2007, पृ ठ–32
50. उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष–34, अंक–12, अगस्त, 2007, पृ ठ–142
51. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–42
52. बिहारी लाल हरित, वीरांगना झलकारी बाई, दिल्ली, कीर्ति प्रकाशन, पृष्ठ–134
53. वही पृष्ठ–135
54. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–81

55. संघ दर्पण, वर्ष–9, अंक–7, 14 जनवरी–14 फरवरी, 2011, पृ ठ–06
56. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–43
57. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–214
58. माताप्रसाद, उत्त्रांचल सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज, द्वितीय संस्करण, 2007, नई दिल्ली, सम्यक् प्रकाशन, पृ ठ–197
59. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–43
60. एम0आर0 विद्रोही, दलित दस्तावेज, प्रथम संस्करण, 1989, नई दिल्ली, सम्यक् प्रकाशन, पृ ठ–82
61. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–214–215
62. डी0सी0 डीन्कर, स्वतंत्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, चतुर्थ संस्करण, 14 अप्रैल, 2007, दिल्ली, गौतम बुक सेन्टर, पृ ठ–44
63. एम0आर0 विद्रोही, दलित दस्तावेज, प्रथम संस्करण, 1989, नई दिल्ली, सम्यक् प्रकाशन, पृ ठ–82–83
64. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–215
65. एम0आर0 विद्रोही, दलित दस्तावेज, प्रथम संस्करण, 1989, नई दिल्ली, सम्यक् प्रकाशन, पृ ठ–83
66. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–218–219
67. वही पृ ठ–222
68. देवेन्द चौबे, 1857 भारत का पहला मुक्ति संघर्ष, प्रथम संस्करण, 2008, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, पृ ठ–248
69. वही पृ ठ–222
70. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–81
71. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–223
72. उषा चन्द्रा, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, प्रथम संस्करण, 1986, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–74
73. आशारानी व्होरा, महिलाएँ और स्वराज्य, द्वितीय संस्करण, 1999, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–64
74. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–82
75. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–223
76. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–82
77. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–223
78. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–82
79. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–224–225
80. उषा चन्द्रा, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, प्रथम संस्करण, 1986, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–74
81. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–225

82. आशारानी व्होरा, महिलाएँ और स्वराज्य, द्वितीय संस्करण, 1999, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–64
83. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–83
84. उषा चन्द्रा, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, प्रथम संस्करण, 1986, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–74
85. शान्ति कुमार स्याल, गौरवशाली भारतीय वीरांगनाएँ, प्रथम संस्करण, 2007, दिल्ली, आत्माराम एण्ड संस, पृष्ठ–83
86. उषा चन्द्रा, सन् सत्तावन के भूले–बिसरे शहीद, प्रथम संस्करण, 1986, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–74–75
87. आशारानी व्होरा, महिलाएँ और स्वराज्य, द्वितीय संस्करण, 1999, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–65
88. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–226
89. उषा बाला, भारत की वीरांगनाएँ, द्वितीय संस्करण, 2006, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ ठ–92
90. अखिलेश मिश्र, 1857 अवध का मुक्ति संग्राम, पहला संस्करण, 2007, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, पृ ठ–134
91. उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष–34, अंकः12, अगस्त, 2007, पृ ठ–75–76
92. सन्तोष कुमार गुप्ता, आधुनिक भारत, प्रथम संस्करण, 2007, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पृष्ठ–541
93. उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष 34, अंकः12, अगस्त, 2007, पृ ठ–76
94. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–234
95. उत्तर प्रदेश पत्रिका, वर्ष 34, अंकः12, अगस्त, 2007, पृ ठ–76
96. आजकल, वर्ष 63, अंकः 1, मई 2007, पृ ठ–69
97. मंजू सुमन, दलित महिलाएँ, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ ठ–220–221
98. मीडिया, द्वितीय अंक, अप्रैल–जून 2007, पृ ठ–162
99. गंगनाञ्चल, वर्ष–29, अप्रैल–सितम्बर, 2006, पृ ठ–93
100. वही पृ ठ–95
101. मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आंदोलन, एक संक्षिप्त इतिहास, प्रथम संस्करण, 2004, नई दिल्ली, बुक्स फॉर चेन्ज, पृ ठ–65
102. दलित साहित्य (वार्षिकी) 2009–2010, वर्ष–बारह, अंकःदस, पृ ठ–267, नई दिल्ली

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 79–86 **ISSN 0974 -1100**

भारत में सामाजिक समरसता–चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. एच.एम बरूआ

भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक अनन्य विशेषता है ''विविधता में एकता'' भारत के भौगोलिक क्षेत्र–पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं, क्षेत्रों, प्रजातियों, वर्णों एवं जातियों में अनेक प्रकार की विभिन्नताऐं पाई जाती है । इन विभिन्नताओं के होते हुए भी सम्पूर्ण राष्ट्र में एकता के दर्शन होते है ।

इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए स्वतंत्र भारत के संविधान में – डॉ. भीमराव अम्बेडकर और संविधान निर्मात्री समिति के सदस्यों ने प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त–स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्वभाव को महत्व देते हुए देश के सभी नागरिकों के साथ लिंग, जन्म–स्थान, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव एवं असमानता नहीं करने तथा सभी के साथ समानता का व्यवहार रखते हुवे देश में सामाजिक न्याय की व्यवस्था की गई है ।

सामाजिक समरता शब्द का अर्थ है – सामाजिक सद्भाव । सामाजिक सद्भाव दो सम्प्रदायों या धर्मों के बीच सौहार्द अथवा मेल–जोल के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

समरसता विभिन्न धर्मो या सम्प्रदायों के बीच हो सकती है क्योंकि, उनके बीच ऊँच–नींच की भावना, असमानता और भेदभाव नहीं होता । किन्तु जाति में समरसता आना संभव नहीं है । क्योंकि, जातियों में ऊँच–नीच की भावना

विद्यमान है । जैसे– जाति सौपान क्रम में ब्राम्हण वर्ण की जातियाँ सबसे ऊपर फिर क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र एवं अन्त्यज वर्ण की जातियाँ सबसे नीचे ।

अतः जब तक समाज में विभिन्न जातियों के बीच ऊँच–नीच एवं श्रेष्ठ और हीन के भाव में, अन्तर समाप्त नहीं आ जाता अर्थात विभिन्न जातियाँ समानता का अनुभव नहीं करती, तब तक उनके बीच समरसता नहीं आ सकती ।

समरसता इस तरह का भाव व्यक्त करती है कि, किसी भी सूरत में गन्दे और धृणित कार्य दलित को ही करना है । जबकि समता में गन्दे और धृणित कार्यों में दलित के समान सभी वर्ण के लोग (ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य) समान रूप से भागीदारी करें ।

अर्थात गन्दे, घृणित, स्वच्छ और अच्छे सभी प्रकार के कार्य समानता के आधार पर सभी वर्ण के लोग करेंगे तो समानता के भाव समाज में उत्पन्न होंगे । तभी दलितो को सामाजिक प्रतिष्ठा मिल सकेगी । सब कर्म समान है, कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता । ये शब्द कहने और सुनने में अच्छे लगते हैं । किन्तु व्यवहारिकता में ये शब्द असमानता को बनाये रखने के पक्षधर है ।

हिन्दू धर्म एवं सवर्ण हिन्दू जातियाँ भी जाति व्यवस्था में समानता या परिवर्तन लाने की विरोधी है । इसलिये वह समता की बात न करे समरसता की बात करते है । समता का कोई तर्क या सिद्धान्त उन्हें पसंद नहीं आता इसलिये सवर्ण हिन्दू समाज बार–बार और दृढ़ता से समता का विरोध करने के लिये समरसता की बात करता है जो दलितों की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये घातक है ।

भारत में जाति व्यवस्था एवं दलित जातियों की स्थिति –

समतावादी, मानवतावादी, सामाजिक न्याय के युगपुरूष, भारतीय संविधान शिल्पी, भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर हिन्दु धर्म की सामाजिक संरचना के प्रमुख अंग चातुवर्ण व्यवस्था (ब्राम्हण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र) से जन्मी एवं फली–फूली जाति व्यवस्था को दोषपूर्ण मानते थे । क्योंकि, जाति व्यवस्था ने व्यक्ति के गुणों एवं निष्ठा को कुण्ठित कर समाज और राष्ट्र की एकता और अखण्डता को हिन्दू धर्म की सामाजिक व्यवस्था के नाम पर (सभी वर्णों के लोगों को लगभग 6500 से अधिक जातियों एवं उपजातियों में विभाजीत करके) खण्ड–खण्ड में बांटकर विभाजीत कर दिया है ।

दूसरी ओर हिन्दूधर्म – जाति व्यवस्था को अपने साथ जोड़कर हिन्दू धर्मशास्त्रों का अंग मानता है और समाज में ऊँच–नीच, भेदभाव, असमानता, अमानवीयता, स्पृश्य–अस्पृश्य, छुआछूत आदि का पोषक बनकर, ब्राम्हण वर्ण की जातियों को उच्च स्थान देकर समाज में सम्मान और आदर देता है । वहीं शूद्र वर्ण की दलित जातियों को निम्न स्थान देकर सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में धृणा, अनादर, अमानवीयता, शोषण, अत्याचार, भेदभाव एवं छुआछूत करके, उन पर अनेकों प्रकार की निर्योग्यताएँ लादकर उनके साथ अनेकों बन्धन लगाता है । ऐसी जाति व्यवस्था के डॉ अम्बेडकर जीवनभर पक्षधर नहीं रहे ।

डॉ. अम्बेडकर को ऐसी जाति व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक अन्याय का कटु अनुभव था क्योंकि, उसकी क्रूर पीड़ाओं को आपने स्वंय भोगा ही नहीं था अपितु इसके विरूद्ध जीवनभर साहसपूर्ण प्रतिरोध करते हुए अनेकों आन्दोलन भी किये थे । वहीं भारत के संविधान में इसे समाप्त करने हेतु अनेकों कानूनन प्रावधान भी किये थे ।

डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय में अगाध श्रृद्धा थी क्योंकि– सामाजिक न्याय में स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्वभाव एवं मानवीय गरीमा के मूल्य निहीत रहते हैं । इसी कारण आपने सामाजिक न्याय के अग्रदूत के रूप में शोषित वर्ग की सेवा की थी, जिससे आपको सामाजिक न्याय का मसीहा कहा जाता है ।[2]

डॉ. अम्बेडकर भारत में जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के स्थान पर एक ऐसे नवींन समाज की रचना करने के पक्षधर थे जो समाज में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व एवं विवेक की आधारशीला पर गठित हो क्योंकि समाज की गरीमा और प्रतिष्ठा इस बात में है कि, शोषित, पीड़ित, उपेक्षित दलित वर्ग को समाज में प्रतिष्ठा मिले । इस वर्ग को प्रतिष्ठा मिलना तब ही संभव है जब समाज में समता, न्याय एवं बन्धुत्व की स्थापना होगी ।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री ''श्री एम.एन. श्रीनिवास के मतानुसार जाति संस्थान में भारतवासियों को एक सामान्य सांस्कृतिक मुहावरा दिया है जिसके अनुसार कोई भारत में कहीं भी रहे व जाति के संसार में रहता है । जातियों का संस्तरण समान नहीं है । जातियों में ऊँच–नींच, मान–सम्मान एवं स्पृश्य–अस्पृश्य के भाव होते हैं क्योंकि जातियाँ खण्ड–खण्ड में विभाजित है वहीं प्रत्येक जाति की

परम्पराएँ, रीति–रिवाज, खान–पान, रहने एवं जीने आदि के तरीके पृथक–पृथक है । इस कारण जातियाँ कभी एक समानता का समाज नहीं बना सकती । अर्थात समाज में समानता नहीं ला सकती ।[3]

जाति का परम्परागत प्रभाव इतना गहरा और व्यापक है कि समाज में व्यक्ति की पहचान उसके गुण, कर्म, योग्यता या व्यवसाय से न होकर उसकी जाति से होती है । कोई भी हिन्दू अपना परिचय अपनी जाति बताकर देता है । जाति बताये बिना उसका परिचय अधूरा रहता है । क्योंकि जाति से व्यक्ति के सरकार, सामाजिक दर्जा आदि आँके जाते हैं और तभी तय किया जाता है कि उस व्यक्ति के साथ सम्मानजनक या अपमानजनक व्यवहार किया जाये ।

इस प्रकार जाति ही अस्पृश्यता एवं छुआछूत का कारण है वहीं दलितों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक दुरावस्था एवं पिछड़ेपन का कारण भी जाति व्यवस्था है । इसके कारण दलितों को गन्दे, घृणित और अल्प आय वाले पेशों तक सीमित कर दिया गया । जबकि सम्मानजनक, प्रतिष्ठित और अच्छी आय देने वाले पेशों पर सवर्णों को एकाधिकार दिया गया है । डॉ. अम्बेडकर के अनुसार मनुस्मृति वास्तव में सवर्ण हिन्दुओं के लिये अधिकारों का चार्टर है । जबकि दलितों के लिये दासता की एक बाईबिल ।

उदाहरण स्वरूप रामायण का प्रसंग यहाँ बताना उचित होगा । लेखिका रमणिका गुप्ता के अनुसार– रामायण पर नाट्य मंचन किया जा रहा था । जिसके पात्रानुसार राम (सवर्ण) और हनुमान (दलित) । इसमें राम नाट्यमंच पर ही हनुमान को गरियायने (धमकाने) लगते हैं – तेरी छुई हुई बुटी मैं कैसे लक्ष्मण को सुघांऊगा, पहाड़ को तूने अपवित्र कर दिया है । मरने दे साले लक्ष्मण को वह भी तो ठाकुर नहीं है साला नहवा (दलित) है । दूसरा नहवा ले आयेगें गांव में । आज में न बचाऊगां इसे, तेरे हाथों से तेरी लाई गई वह बुटी सुंघाकर । तब गांव के पिछड़े और दलित लट्ठ लेकर राम को सबक सिखाने जुट जाते है ।[4]

इस प्रकार जाति संस्तरण में ऊँच–नींच एवं भेदभाव हिन्दू धर्म के देवताओं (भगवान राम एवं हनुमान) के बची में रामायण काल में देखे गये है ।

सामाजिक परिवर्तन

इस प्रकार दलितों की समस्याओं को दूर कर समाज में समानता लाने के प्रयास लगभग 2500 वर्षों से चले आ रहे हैं । क्योंकि हिन्दू धर्म की चातुवर्ण व्यवस्था ऐतिहासिक है । ये मात्र आकस्मिक नहीं बल्कि रचित एवं नियोजित थी जो विश्व के सभी देशों से भिन्न, अनोखी, अनैतिक और अवैज्ञानिक थी ।

दलितों की विभिन्न समस्याओं को दूर करके, दलित जातियों के साथ समरसता लाने हेतु गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरूनानक, सन्त कबीर, सन्त रविदास, राजा–राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, ज्योतिबा फुले, महात्मा गाँधी, डॉ. अम्बेडकर आदि महापुरूषों द्वारा सतत प्रयत्न किये गये ।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में रहकर दलित जातियों के हितों की रक्षा करने और उनके चहुँमुखी विकास करने हेतु स्वतंत्र भारत के संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के द्वारा अस्पृश्यता का अन्त करने, समानता, भेदभाव, बेगार प्रथा, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों की विभिन्न निर्योग्यताऐं समाप्त करने एवं स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व भाव रखने, सम्पत्ति रखने, कोई भी व्यवसाय करने, शिक्षा पाने एवं शैक्षणिक उन्नति करने तथा लोकसभा एवं राज्य की विधान सभाओं में आरक्षित स्थान रखने के प्रावधान किये गये ।

इसी प्रकार ग्रामीण एवं नगरीय निकायों में दलित जातियों की सहभागिता बढ़ाने हेतु वर्ष 1993 में 73 वाँ एवं 74 वाँ संवैधानिक संशोधन करके ग्रामों, जनपद– पंचायतों (ब्लाक पंचायत) जिला– पंचायतों तथा नगरी निकायों के विभिन्न पदों पर पुरूषों एवं महिलाओं के लिये आरक्षित स्थान रखने के प्रावधान भी किये गये है ।

अतः दलित जातियों ने संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर अब तक जो उन्नति की है, वह डॉ. अम्बेडकर एवं अन्य संविधान निर्माताओं की देन है ।

शैक्षिक परिवर्तन

डॉ. अम्बेडकर का कथन है कि जन्म से जाति निर्धारित होती है । गुण अर्जित किये जाते है अतः दलित जातियों को चाहिये कि वे सवर्ण हिन्दुओं की ओर मुँह ताकना बन्द कर दे, और मन की दृढ़ता, इच्छाशक्ति ओर परिश्रम से उन

गुणों का विकास करें जो उन्हें जीवन की प्रतिस्पर्द्धा में सम्मान और स्वाभिमान के साथ खड़ा करके सम्मान के साथ जीवन जीने में मदद करते हैं, और स्वाभिमान के साथ सिर ऊँचा करके जीवन जीना सिखलाते हैं ।

आपने शिक्षा के महत्व बतलाते हुए कहा कि, शिक्षा जीवन का आधार है – शिक्षा के बिना जीवन जीना पशुतुल्य है । कुछ सोचने, समझने और चिन्तन करने की ताकत शिक्षा से आना संभव है । अतः अपनी अस्मिता को बचाने और कुछ कर गुजरने हेतु शिक्षा पाना जरूरी है ।

शिक्षा के अन्तर्गत आपने लड़कियों को भी शिक्षा दिलाने पर जोर देते हुए बताया है कि लड़कियाँ शिक्षित होने पर घर परिवार के आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान एवं ऐसी बातों में परिवर्तन ला देगी, जिन कारणों से आज भी दलित जातियों से दूरी रखी जाती रही है । जैसे कहा जाता है कि सौ शिक्षिकाओं से परिवार में एक पढ़ी–लिखी माँ अच्छी होती है ।

आर्थिक परिवर्तन

डॉ. अम्बेडकर देश एवं समाज के साथ–साथ दलित जातियों का आर्थिक विकास करने हेतु शहरों का विकास करने एवं बड़े उद्योगों और तकनीकी विकास करने के पक्षधर थे । उनका मानना था कि दलित जातियों की आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में दुर्दशा नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक होती है – क्योंकि एक ओर दलितों के पास खेती करने हेतु जमीन नहीं होती और होती भी है तो बहुत कम । जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर पाते । फलस्वरूप वे मजदूरी या भूस्वामियों के यहाँ बन्धक रहकर कार्य करते हैं । जिससे उन्हें सीमित आय होती है । जिसके कारण उन्हें भर पेट भोजन भी नहीं मिल पाता और सदैव आर्थिक अभावों में जीवन जीने को मजबूर रहते हैं ।

दूसरी ओर उनके रहने की दशाऐं भी ठीक नहीं रहती, जिसके कारण वे बीमारियों एवं अन्य समस्याओं से सदैव ग्रस्त बने रहते हैं । फलस्वरूप वे अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक दशाओं में बदलाव नहीं कर पाते है ।

अतः डॉ. अम्बेडकर के अनुसार दलित जातियों के ग्रामीण लोगों को शहरी क्षेत्र में कर्य करने हेतु जाना चाहिये । जहाँ उन्हें उद्योग और अन्य क्षेत्रों में

रोजगार मिल सकेगा । वहीं गाँवों की अपेक्षा मजदूरी भी अधिक मिल सकेगी । जिससे एक ओर उनकी आर्थिक आय में वृद्धि होगी जबकि, दूसरी ओर वे अपनी जरूरतों को भी पूरा कर सकने में समर्थ हो सकेगें ।

साथ ही शहरी वातावरण में रहने से दलित वर्ग के लोग एक–दूसरे के सम्पर्क में आयेगें जिससे वे एक–दूसरे के दुख–दर्द को निकट से समझने लगेंगे ओर संगठित होकर शोषण एवं अत्याचार का मुकाबला करने में सक्षम होंगे । दूसरी ओर उन्हें नया सामाजिक वातावरण मिलेगा । जिससे वे शोषणविहीन जीवन जीना प्रारम्भ कर सकेगें । जिसके परिणामस्वरूप किसी हद तक सवर्ण जातियों का दलित जातियों के प्रति किये जाने वाले व्यवहारों एवं मानसिक सोच में परिवर्तन आना सम्भव होगा और उनमें भावनात्मक लगाव उत्पन्न होने लगेगा, जो सामाजिक समरसता के लिये भी आवश्यक है ।

अतः डॉ. अम्बेडकर ने समाज के शोषित, पीड़ित, दलितजनों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में परिवर्तन और विकास करने सम्बन्धी समय–समय पर जो विचार प्रकट किये थे, उनका प्रभाव अब दलित जातियों के लोगों पर पड़ने लगा है । वहीं उनका विकास भी होने लगा है । जिससे दलित जातियों के लोग अन्य सवर्ण जातियों के लोगों के सम्पर्क में आकर आपसी सद्भाव और परस्पर मिलजुलकर आपसी समस्याओं का समाधान करने लगे हैं । जो सामाजिक समरसता की दशा में शुभ संकेत देता है ।

इस प्रकार समाज में प्रतिष्ठा कुछ मूल्यों पर निर्भर करती है । ये मूल्य है समता, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव । अतः आवश्यक है कि समाज के सभी लोग एक दूसरे का सम्मान करें एक–दूसरे के साथ प्रेम और सद्भाव से रहें, अपनी स्वेच्छानुसार आजीविका हेतु कोई भी नैतिक कार्य या व्यवसाय अपनाने को स्वतंत्र हो । साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने और प्रगति करने के समान अवसर उपलब्ध हो । ऐसा होने पर समाज उन्नत और प्रगतिशील हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप दलित जातियों पर हो रहे भेदभाव, अत्याचार, अमानवीय व्यवहार, शोषण आदि से मुक्ति मिल सकेगी और समाज का ढाँचा शीघ्र ही डॉ. अम्बेडकर के संजोये सपने– ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' को साकार स्वरूप दे सकेगा ।

अतः दलित जातियों को संगठित होना, शिक्षित होना और संघर्ष करने के लिये तत्पर होकर गौतम बुद्ध के मूल मंत्र अप्प दीपो भवः (अपना दीपक स्वंय बनो) को अपने जीवन का लक्ष्य बनाना होगा । तभी हम सामाजिक जीवन में समरसता की अनुभूति देख सकने में सफल हो सकेगें ।

❐

सन्दर्भ –

1. *बी. आर. पुरोहित, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर एवं भारतीय पुनर्जागरण एवं चिन्तन की आवश्यकता, डॉ. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, उज्जैन, वर्ष–2008, पृष्ठ–13*
2. *डॉ. जयप्रकाश कर्दम, सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु संभावित रणनीतियाँ और उपाय, पूर्वदेवा, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, म.प्र. दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, मार्च, 2003, पृ. 2*
3. *डॉ. जयप्रकाश कर्दम, सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु संभावित रणनीतियाँ और उपाय, पूर्वदेवा, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, म.प्र. दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, मार्च, 2003, पृ. 4*
4. *रमणिका गुप्ता, हिन्दी दलित नाटक, पूर्वदेवा, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, म.प्र. दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, मार्च, 2003, पृ. 32*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 87–91 **ISSN 0974 -1100**

सामाजिक समरसता एवं संवैधानिक प्रावधान और डॉ. अम्बेडकर

डॉ. महेश कुमार परदेशी

मूल शब्द सामाजिक समसरता का अर्थ मानव को सुख शान्ति आनन्द देना है । समाज में समरसता तभी प्राप्त हो सकती हैं जब समाज में रहने वाले मनुष्य अन्तः करण और बाहरी रूप दोनों से श्रेष्ठ कार्य करें। अर्थात सामाजिक समरसता और लोक कल्याण की भावना लगभग एक जैसी ही है ।

किन्तु आज मानव के आपसी सम्बन्ध इतने अधिक संकुचित और कलुषित हो गये हैं। कि सब अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते है । समाज के लोगो में आपस मे पक्षपात करने की भावना का निरन्तर विकास हो रहा हैं। आज समाज से निंरतर जनतांत्रिक मूल्यों की कमी होती जा रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मानवता को नुकसान पहुॅच रहा है।

यद्पि भारत विश्व–सभ्यता का जनक माना जाता है तथापि इस देश में आज भी समाज अनेक धर्मो,जातियों,सामाजिक रीतिरिवाजों अनेक राजनैतिक विचारधाराओं और आंदोलनों का कर्मस्थल आज भी बना हुआ है। इसका एकमात्र कारण भारतीय समाज के मनुष्यों में पायी जाने वाली अद्वितीय क्षमता (सहिष्णुता, सहनशीलता, अंहिसा) हैं । इस देश में अनेक नेता, महापुरूष,विद्वान बुद्धिजीवी व्यक्तिवो का जन्म हुआ जिन्होने विश्व में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, उनमें से एक रत्न थे, डॉ.बाबा साहेब अम्बेडकर डॉ.बाबा साहेब अम्बेडकर ने स्वंय कहा है

कि एक विद्वान और एक बुद्धिजीवी मे बहुत बडा अंतर होता है। विद्वान व्यक्ति मे अपने वर्ग के प्रति चेतना होती है और वह अपने वर्ग के हितों की पूर्ति हेतु जागरूक रहता हैं । किन्तु एक बुद्धिजीवी एक मृतक व्यक्ति होता है। जो स्वतंत्र रूप से काम करता है। अपने वर्ग के हित उसे बदका या भटका नही सकते । (द अनटचेबल नई दिल्ली 1948)

सामाजिक समरसता की हिमायत करने वाले डॉ.अबेडकर के अपने मौलिक सिद्धांत थे । उनकी अपनी नई सोच थी उनके अपने नए साधन थे। डॉ.अम्बेडकर ने स्वंय कहा– समाजिक न्याय (समसरता) से मेरा क्या अर्थ हैं इस की व्याख्या प्रो.बर्गबान से अच्छी किसी ने नही कि उन्होनें बताया है।

न्याय का सिद्धांत एक सारभूत सिद्धांत है ओर उसमे लगभग उन सभी सिद्धांतो का समावेश है जो नैतिक व्यवस्था का आधार बना है, न्याय ने सदा ही समानता तथा कार्य के अनुरूप क्षतिपूर्ति के सिद्धांत को प्रतिपादित किया है। निष्पक्षता से समानता उभरी है। नियम और नियमन न्यायपूर्ण और नीति परायणता ये मूल्य के रूप मे समानता से जुड़े हुए है, यदि सभी मनुष्य समान है तब वे सभी एक समान है और यह समान तत्व उन्हे समान मौलिक अधिकार तथा समान स्वत्रंता के योग्य बनाता है। संक्षेप मे न्याय स्वंतत्रता समानता और भ्रातृत्व का दुसरा नाम है। यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नही होगा कि आज भारतीय समाज मे जो भी उत्थान एवं प्रगति हुई हैं, वह डॉ. अम्बेडकर के क्रांतिकारी आंदोलन का ही परिणाम है।

डॉ.अम्बेडकर ने एक शिल्पी की भाँति भारतीय संविधान के निर्माण के समय अपने उत्कृष्ट तर्को को संविधान में उपाचरो के रूप में प्रस्तुत कर सामाजिक समरसता के निर्माण मे महत्तवपूर्ण योगदान दिया आपके द्वारा अनेकानेक प्रावधान किए गए जिससे समाज में समानता की स्थापना हो सकें । कुछ प्रभाव बानगी यहॉ उल्लेखित करना उचित होगा।

1. भारतीय संविधान का उदेश्य स्वतंत्रता, समानता एव भ्रातृत्व के सिद्धांतों पर आधारित एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना है जिस में सत्ता पर जनता

का अधिपत्य हों।

2. भारतीय संविधान की उद्देशिका से हम भारत के लोग.....आत्मार्पित करते है यह भाषा स्पष्ट कर देती हैं। कि हमे संविधान के द्वारा हमारे समाज में आमूल परिवर्तन लाकर (क्रांन्ति) द्वारा नये समाज की रचना करना चाहिए । भारतीय संविधान के भाग–3 में मूल अधिकार और भाग–4 में वर्णित राज्य के नीति–निर्देशक तत्व ऐसे प्रावधान है जो सामाजिक समरसता की दृष्टि से सदैव प्रासांगिक बने रहेगें । कानून के समक्ष समानता, अवसरो की समानता, अस्पृश्यता उन्मूलन, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा एवं संस्कृती का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारो का अधिकार ऐसे अनमोल कानूनी उपहार है जो सामाजिक समानता से संबधित महत्पूर्ण प्रगतिशील परिवर्तनो को संपादित करते है ।

जनता के आर्थिक अधिकारों तथा सामाजिक सुरक्षा के सिद्धांतो के परिपालन हेतु राज्य को जो निर्देश दिये गए है, वे भी सदैव ही प्रासांगिक बने रहेगें । कानूनों का निर्माण एवं पालन करते समय विशेष ध्यान रखना होता है ।

3– संविधान का भाग–3 मूल अधिकारों के अनुच्छेद–14 में विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद–15 में धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद का समापन, अनुच्छेद–17 द्वारा अस्पृश्यता का अंत, अनुच्छेद–18 समाज सेअन्याय को समाप्त करना तथा अनुच्छेद 19, 21, 23, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 35 द्वारा संवैधानिक उपाचरों को उपबंधित किया जाकर समतामूलक समाज की स्थापना में बडा योगदान दिया है ।

4– संविधान के अनुच्छेद–20 में यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति एक गलती के लिये दो बार दंडित नही किया जावेगा । अनुच्छेद–21 एवं 22 में कानूनी अभिरक्षा में उसे संरक्षण का अधिकार प्राप्त है । भाग–4 के अनुच्छेद 39 में समान व्यवहार एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान है । अनुच्छेद–44 में समान सिविल संहिता का प्रावधान है ।

5– संविधान का अनुच्छेद–16 अवसरों की समानता, अनुच्छेद–23 एवं 24

शोषण के विरूद्व अधिकार तथा बाल श्रम को रोकता है । अनुच्छेद–38 (2) आय की असमानता को रोकता है । अनुच्छेद–39 राज्य को निति संचालित करने का निर्देश देता है जिसमें 1– पुरूष और स्त्री सभी नागरिको को समान रूप से जिविका के प्र्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार देता है । 2– समुदाय में भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण को इस प्रकार बांटा जायें । जिससे यह सामूहिक हित का सर्वोत्तम साधन हो सके । 3– पुरूष और स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन दिया जाय । 4– पुरूष और स्त्री कामगारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो, आर्थिक विवशतावश नागरिको को ऐसा रोजगार न करना पडे जिससे उनकी आयु ओर शक्ति का क्षरण न हो । 5– बालकों ओर अवयस्कों के नैतिक शोषण और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाना आवश्यक होगा । 6– अनुच्छेद–41 द्वारा सामाजिक सुरक्षा एवं लोक सहायता तथा अनुच्छेद–42 द्वारा न्यायसंगत मानवीय दशाओं को सुनिश्ति करना, अनुच्छेद–43 द्वारा जीवन निर्वाह मजदूरी, जीवन स्तर, अवकाश आदि का प्रबंध तथा अनुच्छेद–47 द्वारा जनस्वास्थ्य तथा जीवन स्तर में निरन्तर सुधार का प्रावधान है ।

किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि देश की आजादी के 67 वर्षो बाद भी हम वास्तविक रूप से डॉ .अम्बेडकर के समाजिक समरसतावादी समाज की स्थापना के लक्ष्य के आगे नही बढ़ पाए है। समाज के लोगों के मन में अभी भी वर्ण जाति और अस्पृश्यता की भावनाएॅ यथावत बनी हुई हैं। सस्ती लोकप्रियता और स्वार्थ सिद्धि के लिए हम ऐसी भावनाओं को भडकाने में संकोच (शर्म) का अनुभव भी नही करते है। डॉ.अबेडकर के समरसतावादी विचारो की प्रासांगिकता आज भी उतनी है जितनी की स्वंतत्रा प्राप्त करने के पहले थी ।

संक्षेप में हम कह सकते है कि सभी प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक ,आर्थिक धार्मिक अन्याय को समाप्त कर समतामूलक समाज की स्थापना का वैधानिक तरीका अपना कर पूर्ण सामाजिक समरसता युक्त समाज की स्थापना करना ही डॉ0 अम्बेडकर के जीवन का लक्ष्य था । जिसे प्राप्त करने की आवश्यकता आज भी प्रांसगिक है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *एम. जे. एन्टनी, कानून सलाह, हिन्दी पाकेट बुक प्रायवेट लिमिटेड, नईदिल्ली, 1998*
2. *डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, स्टेट्स एण्ड माइनॉरिटिज, पृ. 11,12,110*
3. *गोर्वधनलाल ओझा, भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय एवं डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर समाज विज्ञान शोध पत्रिका, महू, 1996*
4. *एल. आर. बाली, भारत में सामाजिक न्याय के हिमायती डॉ. अम्बेडकर, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर समाज विज्ञान शोध पत्रिका, महू 1996*
5. *एस. आई. बैन, सोशल प्रिन्सिपल एण्ड द डिमॉक्रेटिक स्टेट, पृ. 108*
6. *एम.एल. सहारे, डॉ. अम्बेडकर हिज लाईफ एण्ड विजन, 1989*
7. *आर. जी. सिंह, डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1991*
8. *हरिशचन्द्र शिरी, मानव अधिकारों के पक्षधर डॉ. अम्बेडकर, 1989*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 92–97 **ISSN 0974 -1100**

संत कबीर की वाणी में सामाजिक समरसता की चेतना

डॉ. श्रीमती सोनी चौधरी

संत कबीर का व्यक्तित्व न केवल हिन्दी सन्त कवियों में बल्कि समग्र हिन्दी साहित्य में उत्कृ ट है। ज्ञात अनुश्रूतियों के अनुसार वे मध्यकाल में (लगभग 1398 ई) एक निर्धन परिवार में जन्म लेकर समाज को एकता का मार्ग दिखाये। उन्होंने आडम्बर रहित निर्गुण भक्ति का मार्ग अपनाकर प्रेम को साधक एवं साधना दोनों माना। आडम्बरों को अस्वीकार कर पाखंडियों पर व्यंगात्मक चोट करना, अन्याय और अधर्म का डटकर मुकाबला करना कबीर का स्वभाव था। कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे किन्तु उन्हें आत्मज्ञान था। राम का नाम उनका गुरूमन्त्र था। उन्होंने काव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता एवं विषमता को दूर करने का सन्देश देकर एक दूसरे के हित की चिंता व्यक्त कि हैं। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक विषमताओं का सजीव चित्रण मिलता है। हिन्दी कवि डॉ. रामकुमार वर्मा ने कबीर के सम्बन्ध में कहा है कि ''हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक सीमा को तोड़कर उन्हें एक ही भावधारा में बहा ले जाने का अपूर्व बल कबीर के काव्य में था। अपनें स्वाधीन और निर्भीक विचारों से उन्होंने नवीन मार्ग की ओर संकेत दिया। उनकी समदृष्टि ने उन्हें सार्वजनिक और सार्वभौम बना दिया।''

अध्ययन से विदित होता है कि मध्य काल में धर्म ही मनुष्य के समस्त कार्य–व्यापारों का नियमन करता था। तत्कालीन सामन्ती समाज का यही

स्वीकृत विधान था। समाज में जनसामान्य की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति जटिल थी। छुआछूत, आडम्बर युक्त कर्मकाण्ड सर्वसाधारण पर पुर्णरूपेण हावी था। फलतः इस सामाजिक विषमता के मध्य समस्त जन आन्दोलन का बाह्य रूप मूलतः धार्मिक हो गया। प्रगतिशील जननेता एवं मनीषी मानवमात्र की समानता और एकता पर जोर देकर उन तमाम सामाजिक भेदभाव, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों एवं कर्मकाण्ड पर खुलकर आक्रमण करते थे जिनका आश्रय लेकर उच्च वर्ग सर्वसाधारण के शोषण में लिप्त थे। ऐसे समय में सन्त कबीर का विचार जनमानस को प्रेरित कर रहा था। उन्होंने उस युग की समग्र मूलभूत समस्याओं को अपने काव्य के माध्यम से अत्यन्त मार्मिक और यथार्थ चित्रण किया है। मूलतः धर्मगत एवं जातिगत विषमता की ओर ध्यान आकृ ट करते हुए उन्होंने सामाजिक समरसता को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहे रहिमाना।
कबिरा लड़ि लड़ि दोऊ मुए, मरम न काहू जाना।।

कबीर का विद्रोह समस्त सामंती आचार–विचार और संस्कृति के प्रति था। वे शास्त्र ज्ञान की बात नहीं कहते थे बल्कि सामाजिक असमानता को उजागर करके उपदेशात्मक व्यंग करते थे। उनकी वाणी में अधिक से अधिक निःशक्तजनों के हित का भाव छिपा होता था। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित समस्त धार्मिक, सामाजिक सहित आर्थिक विषमताओं को घूम–घूम कर देखा था और प्रत्येक की अच्छाईयों और बुराईयों को पहचाना भी था। अतः वे किसी भी सम्प्रदाय में बधकर नहीं रहें। उन्होंने हर धर्म के पाखण्डों एवं विषमताओं को जहाँ और जिस रूप में देखा वहीं उसका खण्डन किया। उन्होंने कहा है कि–

मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझापन हारी, तू राख्यो उरझाई।।

उनका तर्क ज्ञान पोथियों की नकल नहीं था और न ही सुनी–सुनाई बातों का बेमेल भंडार था। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराईयों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उनका सम्बन्ध समाज में एक ऐसे युग–सन्धि के काल से रहा

है जिसमें हिन्दु और मुसलमान जातियों के उच्च वर्गों में एक दूसरे के प्रति चाहे कितनी असहिष्णुता क्यों न रही हो लेकिन निम्न वर्ग और जातियों में परस्पर एक दुसरे के निकट आने की और घुल–मिलकर रहने की भावना का संचार हुआ जिसके प्रेरणस्रोत कहीं न कहीं तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग था। उनमें से एक संत कबीर अग्रणी थे जिन्होंने उच्च वर्गों पर निशाना साधते हुए सर्वसाधारण के अनियंत्रित विक्षोभ एवं विद्रोह को एक सरल और सीधा मार्ग दिखाया। उन्होंने तत्कालीन जनता पर विषमगत प्रहार करके बुरी तरह झकझोर दिया और सर्वत्र नव चेतना को आन्दोलित किया। उनकी वाणी में सामाजिक समरसता का संरक्षण था। फलतः तत्कालीन समाज ऐसे हित चिंतक का भरपुर समर्थन किया।

प्रगतिशील आलोचक प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त का मत है कि ''कबीर के समान विद्रोही व्यक्तित्व भारतीय साहित्य के इतिहास में दूसरा नहीं हुआ''। यह सत्य है कि तत्कालीन समय को जिस दृष्टि व वेग से कबीर देखते हैं वह अत्यन्त दुर्लभ है। कबीर की वाणी भारत की सामन्ती व्यवस्था की रूढ़ियों व मिथ्यावाद के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना से भरा है। उन्होंने सत्य को सबसे बड़ा तप माना है।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँचे हैं, ताके हृदय आप।।

कबीर की विशेषता यह है कि वह बहुत बड़े समन्वयवादी थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के इसी महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ''युग का प्रतिनिधि अथवा लोकनायक उसे माना जा सकता है जो विभिन्न विरोधो में समन्वय स्थापित कर सके। हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई कवि उत्पन्न नहीं हुआ। वे वीर साधक थे और वीरता अखण्ड आत्मविश्वास का आश्रय लेकर ही पनपती है। कबीर के लिए साधना एक विराट संग्राम स्थली थी जहां कोई विरला शूर ही टिक सकता है।'' कबीर सभी प्रकार के बाह्य आडम्बरों और पाखण्डों का विरोध करते रहे। उनकी वाणी में आत्मविश्वास था। इसी विश्वास से वर्णाश्रम एवं धर्म पर अवलम्बित तत्कालीन सामन्ती हिन्दू समाज के प्रति उनके धधकते हुए उद्‌गार निकले। 'ना जाने

कित मारिवी, क्या घर क्या परदेश' उपदेश के साथ ही वे समाज के धनाढ्य वर्ग को सचेत होने का संकेत दिया था। उन्होंने अहंकारी एवं घमण्डी पुरूषों पर व्यंग करते हुए स्पष्ट कहा है कि–

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

सही अर्थों में वे एक महान क्रांतिकारी सुधारक थे। लोक कल्याण हेतु मानों उनका समस्त जीवन समर्पित था। उन्होंने जनता में अहिंसा, धर्म निरपेक्षता आदि मानवीय गुणों का प्रचार किया। उनका सम्पूर्ण जीवन गांधी के समान विभिन्न रूप में प्रयत्नों से पूर्ण था। इसलिए उनकी कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं मालूम होता है। वे पीड़ितों की वाणी थे। उन्होंन समाज में प्रचलित खजूर और तिनके रूपी वार्तालाप की खायी को पाटने का भरपुर प्रयास किया। उनकी दृष्टि समाज के हर वर्ग पर समान थी। इसी समानता का पक्ष करते हुए उन्होंने समाज के उच्च एवं सामंती समुदाय को उपदेश दिया कि–

भुखे को कछु दीजिए, यथा शक्ति जो होय।
ता कु बरसी कल वचन, लखो आत्मा सोय।।

उन्होंने समाज को एक दृष्टि से देखने का प्रयास किया। अतः उन्हें हिन्दू समाज में 'जागरण युग' का अग्रदूत कहा जाता है। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ दिया था। हिन्दू–मुस्लिम एकता की जो विचारधारा आज समाज में व्याप्त है उसके प्रवर्तक यदि संत कबीर को माना जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नही होगी। वे हर वर्ग के कल्याण की कामना करते थे। समाज में ऊँच–नीच की भेद भावना को भुलाकर वे सबको साथ–साथ चलने की सलाह दी। सामाजिक बन्धुत्व की भावना को जाग त करते हुए उन्होंने सभी के कल्याण हेतु ईश्वर से प्रार्थना की। सबके खैर की कामना करते हुए उन्होंने उपदेश दिया कि–

ना काहू सौं दोस्ती, ना काहू सौं बैर।।

इस प्रकार संत कबीर ने मानवमात्र की समानता का उद्घोषणा की। कबीर के विचारों में जनसाधारण के हृदय तक पहुँचने की अपूर्व क्षमता थी। वे सामान्यतः व्यवहार में आने वाले पदार्थों के उदारणों द्वारा गूढ़ सिद्धांतो एवं विचारों को अत्यन्त सरल तरीके से समझाने की चेष्टा की है। इसी कारण से कबीर के विचारों की ओर शिक्षित वर्ग सहित अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित वर्ग भी सर्वाधिक आकृ ट हुआ।

सामाजिक समरसता के सन्दर्भ में वे अपने दार्शनिक विचार भी अत्यन्त सरल तथा सीधी–सादी भाषा में व्यक्त किये हैं। ज्ञान मार्ग पर चलने वाले ईश्वर को उन्होंने ब्रह्म कहो है। जो आगम और अगोचर है; सर्व व्यापक है; इस जगत के कण–कण में समाया हुआ है। अपने इसी दृष्टिकोण से उन्होंने 'क्या ब्राह्मण क्या शूद्र' कहकर सभी मनुष्य को एक ब्रह्म के पुत्र होने की संज्ञा दी है। इसी श्रंखला में 'कहे कबीर एक राम जपहुँ रे, हिन्दू तुरक न कोई' कहकर उन्होंने हिन्दू और तुरक के भेद को भी अस्वीकार किया है। उन्होंने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत आदि विषमताओं में फैले हुए जाल को छिन्न–भिन्न करने के लिए अदम्य साहस के साथ उच्च वर्ग की मान्यताओं की तीखी आलोचना की। पंडितों और शेखों इन दोनों पर कबीर के तीखे व्यंग और उनको झकझोर देने वाले व्यंगोक्तियों में ही उस युग की सारी समस्यायें मूर्त हो जती हैं। धार्मिक पंडितों एवं धर्म संस्थाओं से सम्बन्धित वि ामताओं, आडम्बरों को मानों उखाड़ फेकने की प्रवृत्ति उनमें थी। उनका तर्क था कि–

पाहन पूजै हरि मिलें, तो मैं पुजू पहार।
याते तो चाकी भली, पीसि खाय संसार।।

इस प्रकार कबीर ने संतों, कर्मकाण्डी पंडितों और मुल्लाओं के नकलीपन की खुब निन्दा की है। उन्होंने मस्जिदों को निशाना बनाते हुए व्यंग किया है कि 'जा जढ़ मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय'। सही अर्थों में संत कबीर उन महापुरूषों में थे जो युग परिवर्तन का स्वप्न देखते थे। उनके अन्तर्मन में ऐसे समाज निर्माण करने का भाव था जिसमें सभी शांतिमय और कलह से रहित जीवन जी सके। इस कल्पना को साकार करने के लिए उन्होंने 'सीस चढ़ाये

पोटली ले जात न देख्या कोई' कहकर पूँजीपतियों पर व्यंग भी किया। पूँजीपतियों को अनावश्यक संग्रह से बचने की भी सलाह दी। एक सज्जन पुरूष के लिए उनके सुविचार हैं कि 'साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाता लेय' आगे फिर कहते हैं कि 'जहाँ आवे संतोष धन सब धन धूरि समान'। वे चाहते थे कि समाज में इस प्रकार का वातावरण बने कि सर्वत्र समता का भाव हो। समाज मे प्रेम और पारस्परिक सद्भाव का भाव हो। चहूँ ओर लोग मानवीय संवेदनशीलता से युक्त हों। 'कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर' कहकर उन्होंने मानवीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। फलतः उन्होंने व्यक्ति को गुणों के आधार पर पहचानने का दार्शनिक उपदेश दिया।

जाति न पुछो साधू की, पुछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहने दो म्यान।।

वे समाज के लिए एक प्रेरणास्रोत समाजसुधारक के रूप में स्थापित हैं। वे एक ऐसे संवेदनशील संत साधक थे जिन्हें भेदभाव की यह दुनिया पीड़ित करती थी। वे परम्परा और आडम्बरपूर्ण सीमाओं को तोड़कर अपने अनुकूल समाज निर्माण की स्थापना कर रहे थे। इस क्रम में उन्होंने मुल्ला, मौलवियों, ब्राह्मणों–पंडितों के पाखण्ड पर जो प्रहार किया, हिंसावृत्ति की जिस तरह आलोचना की, प्रेम तथा सद्भाव का जो संदेश दिया, समाज में प्रचलित आडम्बरों का जितनी ताकत से विरोध किया, सबको एक ही परमात्मा का संतान कहकर समता का जो उपदेश दिया इससे स्पष्ट होता है कि आस–पास के वातावरण में चरित्रप्रधान समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। तभी तो उनको विवस होकर कहना पड़ा कि–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा अपना, मुझसे बुरा न कोय।।

स्पष्ट है कि समाज हमेशा एक दुसरे की बुराई देखा करता है। इसलिए किसी की निन्दा करने से पहले उन्होंने लोगों का आत्मविश्लेषण, आत्म–मूल्यांकन, करने का सलाह दी। उनका दार्शनिक दृष्टिकोण था कि कोई भी व्यक्ति यदि

स्वयं का मूल्यांकन करने के पश्चात् किसी से कुछ अपेक्षा रखता है तो इससे समाज में बन्धुत्व की भावना स्थापित होती है। सामाजिक समरसता के सोपान निर्मित होते हें। कबीर की अपनी मान्यता थी कि जो समाज में मिलकर रहता है उसे सर्वस्व प्राप्त होता है और जो समाज से दूर रहता है वह जीवन में कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः उन्होंने जनसामान्य में एकता रूपी बीज के अंकुरण के साथ ही तार्किक उपदेश भी दिये।

जिन खोजा तिन पाईयां, गहरे पानी पैठि।
जो बौरा डुबन डरा, रहा किनारे बैठि।।

उक्त लेख से स्पष्ट है कि वे अपने क्रांतिकारी प्रवृत्ति के द्वारा मध्यकलीन समाज में मूलभूत परिवर्तन करना चाहते थे जो तत्कालीन परिस्थियों की मांग थी। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा था। मानव दुःख से द्रवित हुए थे। मानव की अज्ञानता, बाह्य आडम्बर और ढ़ोंग से उनको मानवमात्र पर तरस आ गया था। तभी तो उनके अन्तर्मन की पीड़ा काव्य के माध्यम से बाहर आ गयी –

चलती चाकी देखि कर, दिया कबीरा रोय।
दुई पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।।

संक्षेप में कह सकते हैं कि संत कबीर की सहज और सधुक्कड़ी वाणी का सामान्य जन पर जहाँ व्यापक असर पड़ा वहीं विशिष्ट जन भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। उन्होंने समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव रखने का खुलकर समर्थन किया है। वे प्रेम को भी कष्ट साध्य मानत थे। उनके अनुसार ईश्वर से प्रेम करना अर्थात् भक्ति–भावना का निर्वाह कोई सरल कार्य नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि जो अपना अहंकार समाप्त कर लेता है वही प्रेम कर सकता है। इसलिए 'ढाई आखर प्रेम का, पढे सो पंडित होय' तर्क के साथ समाज के पंडित वर्ग पर भी उनके व्यंगात्मक स्वर निकले। कबीर के सामाजिक समरसता को रेखांकित करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि ''कबीर जिस संतमत के प्रवर्तक थे उसमें बाह्य आडम्बर के जितने रूप हो सकते थे, उनका बहिष्कार सम्पूर्ण रूप से किया था।'' स्पष्ट है कि कबीर उन आडम्बरपूर्ण आचरण का भी पूरी शक्ति के

साथ विरोध किया जो किसी आचार्य या पैगम्बर द्वारा प्रवर्तित हो अथवा श्रेष्ठत्म समझे जाने वाले धर्म ग्रंथ से साम्य रखती हो। अतः कह सकते हैं कि वे तत्कालीन नवजागरण युग के अग्रदूत थे। जिन्होंने समाज के प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह धार्मिक हो अथवा सामाजिक सबका खण्डन कर सामाजिक समरसता की स्थापना पर बल दिया।

❐

सन्दर्भ –

1. *अयोध्यासिंह उपाध्याय, कबीर वचनावली*
2. *आचार्य पुरशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख*
3. *आचार्य रामचन्द्र तिवारी, कबीर मीमांसा*
4. *श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली*
5. *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर*
6. *केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीर पंथ*
7. *रामकुमार वर्मा, संत कबीर*
8. *रामकुमार वर्मा, कबीर का रहस्यवाद*
9. *गोविन्द त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 100–103 **ISSN 0974 -1100**

गाँधी – अम्बेडकर की वैचारिक समरसता

डॉ. निवेदिता वर्मा

महात्मा गाँधी और डॉ. अम्बेडकर ने अपने अपने जीवन काल में न केवल अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाया बल्कि कई मुद्दों पर कट्टर मतभेद भी रहे । लेकिन जीवन की अंतिम अवस्था तक उनके उद्देश्य समान थे । सामाजिक राजनीतिक रूप से असमान वर्ग को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने के लिए दोनों ने ही अपनी–अपनी शैली में संघर्ष किया । ऐसा माना जाता रहा है कि समाज में रहने वाले इस वर्ग के दुख दर्द जानने के लिए जातीय समानता की आवश्यकता होती है । लेकिन मानवीय संवेदना को समझने के लिए किसी जाति का नहीं बल्कि संवेदनशील व प्रतिबद्ध होना जरूरी है ।

गाँधी – अम्बेडकर ने परतंत्र भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक चेतना व विकास को न सिर्फ परिवर्तित किया वरन् आकंठ में डूबी असमानता को समाप्त करने के लिए वचनबद्ध रहे । भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्यता के कोढ़ को समूल मिटाने के लिए प्रतिबद्ध प्रयत्न किए ।

गाँधी – अम्बेडकर का भिन्न परिवेश होने के बाद भी सामाजिक व्यवस्थाओं में आमूल–चूल पिरवर्तन किए है । वे भी तबजब कि गाँधी – अम्बेडकर के बीच समाज परिवर्तन में कानून की भूमिका को लेकर गहरा मतभेद था । गाँधी हृदय परिवर्तन कर नैतिक जागरण से सामाजिक परिवर्तन का समर्थन करते रहे । वहीं अम्बेडकर की भाषा, शैली, चिंतन प्रणाली, विचार अभिव्यक्ति और प्राथमिकताओं

में अंतर के उपरांत भी दोनों के साथ कुछ ऐसी अमानवीय घटना घटित हुई कि दोनों की आत्मा में दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग के लिए करूणा और सेवाभाव जागृत हुआ । गाँधी जी ने 'हरिजनों' के लिए कार्यों की रणनीति बदल दी दूसरी तरफ अम्बेडकर की धर्म के प्रति आस्था बढ़ी और 1956 में बौद्ध धर्म की दीक्षा की घोषणा की साथ ही गाँधी जी को दिए गए आश्वासन का उल्लेख भी किया वैचारिक स्तर पर तीव्र मतभेदों के पश्चात भी अम्बेडकर के व्यक्तित्व व कार्यशैली पर गाँधी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता था विशेष रूप से संघर्ष की गाँधीवादी सत्याग्रह की शैली को अम्बेडकर ने अपनाया था । यही नहीं सवर्ण व सनातनी हिन्दू होते हुए भी गाँधी द्वारा अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों की अम्बेडकर ने हमेशा प्रशंसा की है । गाँधी–अम्बेडकर इस तथ्य से सहमत थे कि थोपे गए परिवर्तन स्थाई महत्व के नहीं हो सकते तथा दूरगामी और मूलभूत परिवर्तन सत्यागृह व अहिंसक तरीकों से ही लाए जा सकते हैं ।

गाँधी–अम्बेडकर दोनों ही सामाजिक क्रांति के प्रणेता रहे । शोषण विहीन समाज की स्थापना करना पीड़ित मानवता के उत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त करना ही दोनों के जीवन का उद्देश्य था । गाँधी–अम्बेडकर ने दलितोत्थान को गीता समानार्थी अध्याय माना था । अम्बेडकर भारत में न्यायसम्मत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए दलित वर्ग के उत्थान को अनिवार्य मानते थे । उनका दृढ़ मत था कि जब तक समाज के पिछड़े और अस्पृश्य समझे जाने वाले वर्गों को अन्य वर्गों के समकक्ष सामाजिक और आर्थिक स्तर प्रदान नहीं किया जाता राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक है ।

गाँधी जी दलितों को समान राजनीति, आर्थिक, सामाजिक अधिकार दिलाने के साथ–साथ उनको मंदिरों में प्रवेश, पूजा–आराधना के अधिकार के पक्षधर थे । क्योंकि वे चाहते थे कि दलित वर्ग भी आत्मसम्मान से समाज में रहे । उनका मानना था कि अस्पृश्यता भारतीय समाज का न सिर्फ कलंक है बल्कि घातक रोग है जो परिवार, समाज, राष्ट्र को समूल नष्ट कर देगा । गाँधी–अम्बेडकर दोनों ने ही धर्म को अपरिहार्य माना दोनों ने ही माना कि धर्म में कोई जातिभेद नहीं है ।

धर्म, नैतिक आचरण और मानवतावाद की दृष्टि से उनके विचारों में समानता है । दोनों के प्रेरणा का स्त्रोत धर्म है ।

गाँधी जी की विचारधारा में प्राचीन भारतीय धर्म–ग्रंथ विचारकों में अन्य धार्मिक ग्रंथ कुरान, बाईबिल, बौद्धधर्म व विचारकों में रसकिन, टालस्टॉय का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । उन्होंने अपने विचारों व शिक्षा में धर्म का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है । उनका मानना है धर्म ही जीवन का आधार है । धर्म सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वहन की प्रेरणा का मूल स्त्रोत है । धर्म का स्वरूप 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' का है । जो सर्वदा सबके हित के लिए होता है उनका मानना था सभी धर्मों में सत्य–अहिंसा का पाठ है । आवश्यकता उसके हृदय से पालन करने की है ।

डॉ. अम्बेडकर के धर्म चिन्तन का आधार उन्होंने धर्म को आत्मा की शुद्धि का मार्ग बताया है । जिसकी संरचना शुद्ध आचरण व सदाचार पर हुई है । धर्म, भेद–भाव रहित नीतियों के आधार पर समाज में पारस्परिक भाईचारा व सौहार्द बनाने का नाम है । जो मानवता में प्रेम व त्याग का संदेश देता है । डॉ. अम्बेडकर का धर्म चिन्तन सामाजिक समरसता में व्यक्तियों के सम्मान और प्रतिष्ठा को स्थापित करता है । बम्बई में बनने वाले मंदिर के संदर्भ में 11 अप्रेल, 1927 को डॉ. अम्बेडकर ने भाऊरावजी को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने 'दलित वर्ग संघ' द्वारा चन्दा एकत्रित करने पर आशंका व्यक्त करते हुए लिखा कि 'हम लोगों के लिए अलग मंदिर होना फायदेमंद नहीं है ।' स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर ने कभी भी दलित वर्ग के लिए किसी भी तरह की स्वतंत्र व्यवस्था पर सहमति व्यक्त नहीं की वरन् मौजूदा व्यवस्था में समानता व मुख्य धारा में जोड़ने के विचार को महत्व दिया । जो परिवार, समाज, राष्ट्र में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समरसता को स्थापित करेगा ।

यहां तक की गाँधी – अम्बेडकर ने अपने इतर धर्म के दर्शन को स्वीकार किया । गाँधी जी ने जैन मत से पांच महाव्रतों – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहम्चर्य, अपरिग्रह से मानवतावादी चिंतन के विकास को सामाजिक समरसता की रीढ़ माना है । अम्बेडकर ने बौद्धधर्म के पंचशील सिद्धान्तों को आत्मसात किया है ।

अम्बेडकर के विचार अनुसार सामाजिक समरसता का मूलमंत्र बौद्ध चिंतन के पंचतत्व में समाहित है ।

– प्राणी – हत्या से विरक्त रहने की शिक्षा ।

– चोरी न करने की शिक्षा

– कामवासना पूर्ण अनाचार से दूर रहने की शिक्षा ।

– असत्य न बोलने की शिक्षा ।

– शराब मादक पदार्थ के सेवन से रिक्त रहने की शिक्षा ।

गाँधी – अम्बेडकर ने आजीवन समाज के मूल में साहचर्य की भावना को पल्लवित, पुष्पित किया । उनका मानना था मानवीय चेतना परस्परता के सिद्धांत पर जीवित है जो सामाजिक मूल्यों का निर्माण करती है जिनका संबंध आर्थिक, राजनीतिक मूल्यों को परिष्कृत करने से है ।

❐

सन्दर्भ –

1. *प्रदीप माथुर, महात्मा गाँधी और अम्बेडकर, रिशिका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर*
2. *गणेश मंत्री, गाँधी और अम्बेडकर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली*
3. *डॉ. महेश्वर दत्त, गाँधी, अम्बेडकर और दलित, राधा पब्लिकेशन्स, नईदिल्ली*
4. *डॉ. रामविलास शर्मा, गाँधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याऐं, वाणी प्रकाशन*
5. *Mahatma Gandhi and Dr. Ambedkar of Islam and Indian Muslims*
6. *Reeta Bagchi, B.R. Publishing Corporation A Division of BRPC (India Ltd.) Delhi*
7. *Shridhar Tripathi, Gandhi. Ambedkar and Indian Dalit, Anmol Publication Pvt. Ltd. New Delhi*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 104–111 ***ISSN 0974 -1100***

वास्तव में आरक्षण किसको

प्रो. बाबूलाल चांवरिया

नैसर्गिक सिद्धांत से सभी मनुष्य समान है किन्तु भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अगड़े और पिछड़े वर्गों का विभाजन किया हुआ है । सामाजिक न्याय की दृष्टि से किसी जाति वर्ग विशेष में जन्मा व्यक्ति जिसको पिछड़ा घोषित किया हुआ है उसके पिछड़ेपन का निवारण करने के लिए वास्तव में आरक्षण का हक उसी को मिलना चाहिए । पिछड़े वर्गों में जाट, यादव, अहीर, सुथार, कुमार, गुर्जर, विश्नोई, वैष्णव, घौसी, पाटीदार इत्यादि पिछड़ी जातियों के कई सम्पन्न जातीय समूह है । जिनके पास सैकड़ों एकड़ कृषि उपजाऊ भूमि है । वे किसान के नाम पर कृषि आय के सहारे करोड़ों रूपयों की कर छूट प्राप्त कर टेक्स चोरी कर रहे हैं । इनमें हजारों उद्योगपति, नौकरशा, व्यापारी है तथा अनेकानेक अपने पूर्वजों की पैतृक सम्पदा के परम्परागत स्वामी है जो पिछड़ी जाति का होने की मोहर चस्पा लगाकर आरक्षण का लाभ ले रहे हैं या लेने पर उतारू है ।

गुजरात में आरक्षण को लेकर पाटीदार समुदाय घमाशान मचाए हुए है । पाटीदारों की पहचान पटेल के रूप में है और वल्लभभाई पटेल आजाद भारत के पं. जवाहर लाल नेहरू के बाद दूसरे नम्बर के शक्तिशाली नेता के रूप में पहचाने जाते है । गुजरात के पटेल कृषक और भूस्वामी है । यह लोग ओ.बी.सी. की श्रेणी में आकर आरक्षण लेने की मांग कर रहे हैं । हार्दिक पटेल के नेतृत्व में अब लोग एक नई राजनीतिक पार्टी 'पटेल नव निर्माण सेना' की घोषणा कर सकते हैं ।

ध्यातव्य है कि वही लोग है, जिन्होनें दलितों को आरक्षण नहीं मिलना चाहिए के मुद्दे को लेकर 1985 में आरक्षण विरोधी आग लगाई थी और पूरे गुजरात में दलितों की बस्तियों को जला दिया था, जैसे गोधरा काण्ड में मुस्लीम बस्तियों को जला कर साम्प्रदायिक अग्नि प्रज्वलित की थी । 1990–1991 में मंडल आयोग का विरोध करने में पटेल लोग ही सब से आगे थे और आज वे ही उस के तहत आरक्षण मांग रहे हैं ।

राजस्थान की राज्य सरकार (भा.ज.पा. नीत) ने 9 सितम्बर, 2015 को अपनी केबिनेट की बैठक में दो अलग–अलग फैसले लिए है कि राज्य में आर्थिक रूप से पिछड़े सवर्णों को 14 फिसदी आरक्षण देने के लिए राजस्थान आर्थिक पिछड़ा वर्ग (राज्य की शैक्षिक संस्थाओं में सीटों राज्य के अधीन सेवाओं में नियुक्तियों और पदों का आरक्षण) बिल 2015 का प्रारूप भी केबिनेट में मंजूर किया । इससे गुर्जरों समेत पांच धुमन्तु जातियों को 5 फिसदी आरक्षण मिलेगा । ये दोनों बिल विधानसभा के मानसून सत्र में पारित कर दिये गये ।

सामाजिक, शैक्षिक तथा आवश्यकता के रूप से पिछड़ी जातियों के उन्नयन के किसी सचेत प्रयास को क्या यह कह कर खारिज किया जा सकता है कि इससे जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा ? मेरे विचार से दलित और पिछड़ी जातियों के उन्नयन की कोशिश को जातिवाद के खिलाफ सकारात्मक कदम के रूप में देखा जाना चाहिए न कि जातिवाद के रूप में ।

मंडल विरोधी के दौरान मैने कहा था कि मंडल आयोग की रिपोर्ट में जातिवाद का तत्व अगर कहीं देखा जा सकता है तो केवल वहीं पर जहाँ यह रिपोर्ट पिछड़ी जातियों के खाते–पीते, सम्पन्न परिवारों को सामान्य वर्ग में रखने से इन्कार करती है और पिछड़ी जातियों के उन लोगों को भी आरक्षण के दायरे में रखती है जो अब आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े नहीं रह गये है मंडल के विरोधी आन्दोलन को उस वक्त की बहुत सी विपक्षी पार्टियों ने भी हवा दी थी ।

हालांकि सभी पार्टियों के जारी उनके चुनाव घोषणा पत्र में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का वादा किया गया था । नो न्यायाधीशों की

खंडपीठ ने बहुमत से मंडल आयोग की सिफारिशों को संविधान संगत ठहराया था, खंडपीठ ने केवल क्रीमिलेयर को लेकर उंगली उठायी, मंडल आयोग को जातिवाद से नहीं जोड़ा, यह महत्वपूर्ण बात है । इसको उलट कर देखे कि क्या पिछड़ी जातियों के उन्नयन के प्रयास को, जातिवाद को बढ़ावा देने वाला बताकर खारिज कर दिया जाना चाहिए । यहाँ पर जाति व्यवस्था की मौजूदगी को स्वीकार करने तथा इसे मंजूरी दिए जाने के बीच फर्क किया जाना जरूरी है । हिन्दू समाज में जाति प्रथा विद्यमान है इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता और सीधे यह कह देने पर भी हम इसे नहीं मानते कुछ हांसिल होने वाला नहीं । 1931 में हुई जनगणना के दौरान यह विचार आना शुरू हो गये थे कि यदि जाति को अधिकारिक तौर पर मान्यता दी जाए तो जाति व्यवस्था धीरे–धीरे स्वतः समाप्त हो जाएगी । 1931 के बाद हुई जनगणनाओं से जातिगत आधार हटा भी दिया गया, लेकिन इससे न तो जाति व्यवस्था की विद्यमता पर असर पड़ा और न ही यह जाति व्यवस्था कमजोर हुई । जागरूक हिन्दुओं की एक छोटी सी संख्या जाति विरोधी है । जाति तोड़ों के नारे में विश्वास रखने वाले कुछ नौ जवानों ने अपने नाम के आगे जाति नाम का प्रयोग इस आधार पर बंद कर दिया कि इससे व्यक्ति की जाति का पता चलता है। सुधारवादी हिन्दुओं का यह कदम तारीफ के काबिल तो है लेकिन इस व्यवहार से जाति व्यवस्था के अस्तित्व को कोई खतरा पैदा हुआ हो या जाति कमजोर हुई है, ऐसा नहीं लगता है । जाति संयुक्त हिन्दू परिवार का ही विस्तार है, हालांकि जहाँ परिवार एक प्रशंसनीय सामाजिक संस्था के रूप में कायम है, वहीं जाति व्यवस्था निर्विवाद रूप से नुकसानदायक है । इसमें दो कमिया है पहली जाति व्यवस्था सामाजिक श्रेणीकरण पर आधारित है, जिसमें कुछ जातियाँ ऊँची मानी जाती है और शेष जातियों से श्रेष्ठ समझी जाती है । अभी हाल ही में इन जातियों का शिक्षा के साथ–साथ आर्थिक संसाधनों पर भी वर्चस्व था । जिसके चलते निचली जातियाँ शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ गई, जातियों के बीच सामाजिक श्रेणियां है, जिसमें ब्राम्हणों को सर्वश्रेष्ठ मानकर सबसे ऊपर और अनुसूचित जातियों को हीन मानकर सबसे नीचे रखा गया है । जाति व्यवस्था की दूसरी कमी यह है कि यह स्वजातियों के अंतर जातीय विवाह को ही मान्यता देती है ।

खान–पान और सेक्स संबंध को बनाए रखने में कुछ उदासीन जरूर हो गई । किन्तु जाति व्यवस्था और जातिप्रथा को नकारते नहीं है । स्वजातीय विवाह परंपरा तथा सामाजिक श्रेणीकरण जाति व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करते रहे हैं । यह एक खतरनाक सामाजिक संस्था है और सामाजिक श्रेणियों में जैसे–जैसे हम नीचे की ओर जाते हैं, स्थितियाँ बद से बदतर होती जाती है । भाई–भतीजावाद भी एक बड़ी बुराई है, जो जातिवाद से जुड़ी हुई है, लेकिन यह केवल जाति तक सीमित नहीं यह परिवार तथा दूसरे विभिन्न समूहों में भी पाई जाती है ।

जाति व्यवस्था 2500 साल से ज्यादा पुरानी है । बौद्धों तथा जैनियों ने इसका विरोध किया । समय–समय पर इस व्यवस्था को खत्म करने की कोशिश की गई । गुरूनानक भी जाति व्यवस्था के विरोधी थे और उनके इस विरोध के परिणति नये सिख धर्म की स्थापना भी हुई । सिखधर्म स्वीकार करने वाले कुछ हिन्दुओं के बीच अभी तक जाति के आधार पर विभाजन मौजूद है । कर्नाटक में लिंगायत उत्तरी और मध्य भारत में आर्य समाजी पूर्वी भारत में ब्रम्ह समाजी सभी जाति व्यवस्था के विरोधी थे, लेकिन आर्य हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था अपनी पूरी ताकत के साथ मौजूद रही है । मुझे ऐसा लगता है कि बड़ी संख्या में अंर्तजातीय विवाहों से ही जाति व्यवस्था को कमजोर किया जा सकता है। इन विवाहों के जरिये इस व्यवस्था को बनाए रखने वाली स्वजातिय विवाह परंपरा धीरे–धीरे समाप्त हो जाएगी । अंर्तजातीय विवाह व्यवस्था, जिसकी भगवद् गीता में आलोचना की गई है । भगवद् गीता के ऐसे सिद्धान्तों के नकार से ही जाति व्यवस्था को समाप्त करने का प्रभावी रास्ता नजर आता है । मुझे डॉ. अम्बेडकर के वचनों की याद आती है कि हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथो के प्रति आस्थाओं को समाप्त कर देना चाहिए ।

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में महाराष्ट्र में गैर ब्राम्हण आन्दोलन महात्मा ज्योतिबा फूले के नेतृत्व में शुरू हुआ, तेज तर्रार और प्रगतिशील विचारो वाले महात्मा फूले माली समुदाय के थे । बाद में बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक समानता के लिए इस आन्दोलन को अछूतों के बीच फैलाया और तेज किया । शिव सेना के कुछ तत्वों को छोड़ कर कोई बाबा साहेब की इस

आधार पर आलोचना नहीं करता कि आरक्षण के मामले में वे जातिवादी थे । उनके उदाहरण से स्पष्ट है कि नीचली जातियों के उन्नयन के लक्ष्य के उद्यम को जातिवादी नहीं बताया जा सकता, चूंकि यह प्रयास जातियों के बीच खाईया पाटने के लिए थे। अतः इन्हें जाति विरोधी कहा जा सकता है । डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन की तरज पर पिछड़ी जातियों की बेहतरी के लिए आन्दोलन हो रहा है । जिस तरह डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन को जातिवादी नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार अन्य पिछड़ी जातियों के उन्नयन के लिए हो रहे आन्दोलन को जातिवादी नहीं कहा जा सकता है । यह तो हिन्दू समाज में सामाजिक, भेदभाव तथा शैक्षिक समानता का आन्दोलन है, जो निशचित रूप से जाति व्यवस्था खत्म करने का सबसे कारगर उपाय है । ऊँची जातियों के कुलिन तबकों से हिन्दू साम्प्रदायिकता को सर्मथन मिल रहा है । जहाँ हिन्दुओं का सवाल है बहुसंख्यक नीचली जाति के लोगों की है । नीचली जाति के लोग अभी भी साम्प्रदायिकता के विषाणु से बचे हुए हैं, हालांकि साम्प्रदायिक दंगो में उनका उपयोग धर्मान्ध हिन्दू गैर हिन्दुओं के लिए करते हैं । यहाँ ये वही हिन्दू कट्टर पंथी है, जो भारत के अल्पसंख्यक मुस्लमानों, सिक्खों और ईसाईयों बौद्धों व उन शूद्रों के विकास को लेकर दुर्भावना रखते हैं ।

इधर राजस्थान सरकार (भाजपानीत) अनुसूचित जाति, जनजाति के 12 प्रतिशत आरक्षण को बाधित करने के लिए मीणा–मीना शब्दों को अग्रेषित कर विवाद को और अधिक उलझाने में सक्रिय नजर आती जा रही है । जब राज्य सरकार के मंत्री बयान देते है कि मीण–मीना एक है तो अधिकारिक अधिसूचना जारी क्यों नहीं करते ? जब राज्य सरकार मीणा–मीना को एकहीमान रही हैतो उत्तप्रदेश, दिल्ली व हरियाणा की तरह राज्य सरकार अधिकारिक अधिसूचना जारी क्यों नहीं कर रही है और क्यों प्रमाण–पत्र बदलवाने पर रोक लगाई गई है ? राज्य सरकार की अगर इस मामले में नियत साफ हो तो सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग द्वारा 30 सितम्बर, 2014 व 23 दिसम्बर, 2014 को प्रमाण–पत्र जारी करने के बारे में निकाले गये परिपत्र वापस ले लेने चाहिए । लेकिन मीना–मीणा के शाब्दिक अर्थ को विवाद बना कर आरक्षण में रूकावट पैदा कर रही है ।

शुक्रवार 18 सितम्बर, 2015 को जयपुर में मीणा समाज की बड़ी भारी रैली आयोजित की क्योंकि इसी दिन विधान सभा का मानसून सत्र प्रारम्भ हुआ जनजाति नेताओं से मुख्यमंत्री वसुन्धरा राजे और सामाजिक न्याय एवम् अधिकारिता मंत्री अरूण चतुर्वेदी एवं ससंदीय कार्यमंत्री ने वार्ता की । इसके बाद राज्य सरकार ने विवाद की जड़ माने जाने वाले सामाजिक न्याय विभाग के दो सर्कुलर वापस लेने और हाईकोर्ट में सुनवाही जल्द कराने की बात कहीं । सरकारी की ओर से हाईकोर्ट में शपथ–पत्र पेश किया जा चुका है कि मीणा–मीना एक है । राज्य सरकार ने 30 सितम्बर, 2014 को जारी किए आदेश पत्रों को वापस लेने के लिए भी महाधिवक्ता एन.एम. लोढ़ा के माध्यम से उच्च न्यायालय में प्रार्थना पत्र दाखिल किया है । सरकार ने उच्च न्यायालय की जोधपुर पीठ में भी एक शपथ–पत्र पेश किया है कि मीणा–मीना को एक ही माना है । मीणा समुदाय आरक्षण को संविधान की नवमी अनुसूची में शामिल करवाने की मांग भी कर रहे है और वर्तमान में एस.सी में शामिल नायक, धानक, धानुक, धानकिया एवं कोली आदि जातियों को जनजातिका प्रमाण–पत्र देने पर रोक लगाने की मांग कर रहे हैं । धानका समाज का आरोप है कि मीणा समाज धानका समाज को जनजाति से बाहर करने का षड्यंत्र कर जनजाति का सारा आरक्षण स्वयं लेना चाहती है । जबकि भील और नायक तथा दस अन्य जनजातियां आज भी अपने आरक्षण को ले नहीं पा रही है। जनजाति के आरक्षण का अधिकांश भाग मीणा–मीना ही ले रहे हैं । राजस्थान के दो जिलों में अशोक गेहलोत सरकार ने सहरिया जनजाति के आरक्षण को दो जिलों में सुरक्षित रखने का कानून पास किया था । राजस्थान में जनजाति की कुल – 12 जातियां है । जो मीनाओं–मीणाओं के मुकाबले में अत्याधिक पिछड़ी हुई है। वे भी आरक्षण का लाभ लेने के लिए अपनी बारी आने का इन्तजार कर रही है ।

आरक्षण सही मायने में तभी समाज के लिए उपयोगी है, तब वंचित तबके को इसका फायदा मिलें, इसके लिए जरूरी है कि क्रीमिलेयर पद्धति को लागू किया जाए अभी यह ओबीसी में तो लागू है, लेकिन पिछड़ी जातियों में कुछ उन्नत जातियों को आरक्षण के इस दायरे से बाहर करने के कानून को बनाकर लागू किया जाना चाहिए । पिछड़ी जाति के जो लोग आरक्षण की वजह से उच्च

पदो पर पहुँच गए हैं और जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई है, उन्हें आरक्षण का फायदा क्यों मिलना चाहिए ? बड़े पदों पर आगें बढ़े लोग अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा और सुविधाऐं उपलब्ध कराने में सक्षम है । ऐसे में अगर वास्तव में पिछड़े लोगों के नाम से लाभ उठाने वाले सम्पन्न लोगों के बच्चे भी उसी कतार में खड़े होंगे जिसमें गांव के गरीब दलित का बच्चा खड़ा है, तो गरीब का लाड़ला वहीं खड़ा रह जाएगा और लाभ दूसरा उठा लेगा । कैट, क्लैट, सीपीएमटी और आर. ए. एस. जैसी परीक्षाओं की तैयारी के लिए बड़ी पूँजी और संसाधन की जरूरत होती है । आरक्षण की वजह से बड़े पदों पर बैठे लोग अपने बच्चों को वह सुविधाएं उपलब्ध कराने में सक्षम है । गांव के गरीब दलित परिवार में पले पढ़े बच्चे के पास सिवाय मेहनत के होता क्या है ? अगर उनके बच्चे भी उनके साथ परीक्षा में बैठेंगे तो दलित पुत्र निश्चित रूप से उनके साथ, उनके मुकाबले पिछड़ जाएगा ।

आरक्षण का असली हकदार अपनी बारी का इतंजार करता रहेगा और उच्च तबका फायदा उठाता रहेगा । इससे समाज में कभी न भरने वाली एक गहरी और चौड़ी खाई पैदा हो जाएगी । आरक्षण की मूल भावना यह रही है कि समाज के वंचित, शोषित और उपेक्षित तबके को विशेष सुविधाएँ और रियायते देकर उन्हें मुख्य धारा में शामिल किया जाए । संविधान सभा में जब इस बात पर बहस हुई तो अधिकांश सदस्य इस बात से सहमत भी थे । लेकिन कालान्तर में आरक्षण व्यवस्था में बुछ खामियां पैदा हो गई । जिन समुदायों को आरक्षण मिला उनमें भी उन्हीं लोगों ने इसका फायदा उठाया जो पहले से सबल और सक्षम थे, जबकि उन्हें आगे आकर पहल करनी चाहिए थी कि जब उनका विकास हो चुका है और और वो अपने दूसरे भाइयों के लिए इसे छोड़ते हैं । इस तरह की सदाश्यता से न केवल समाज में भाईचारा बढ़ता है बल्कि वास्तव में पिछड़ों को भी लाभ मिलता है । राजस्थान में भी ओबीसी और एसबीसी कोटे में आने वाली जातियों के सामने दूसरी जातियां भी हैं, लेकिन वह किसी परिस्थितियाँ की वजह से उस वक्त इस सूची में शामिल नहीं हो सकी, जब भी कोई जाति तर्कों के साथ इस कोटे में शामिल करने की मांग सरकार से करती है तो आरक्षण का लाभ ले रही पूर्व जातियां ही उनका सबसे पहले विरोध करती है । होना यह

चाहिए कि सरकार समय–समय पर यह समीक्षा करे कि कौन पिछड़ गया है, उसे आगे आने का मौका देना चाहिए । आरक्षण का प्रावधान संविधान में इसी मंशा के साथ किया था कि इससे समाज में समानता बढ़ेगी, लेकिन आज तो संविधान की मूल भावना के साथ मजाक हो रहा है । इधर केंद्रीय और राज्यों की सरकारों में बेठे आर्य हिन्दू सर्वण मानसिकता के राजनेता और नौकरशाह वास्तविक पिछड़ें, दलितों आदिवासियों के संवैधानिक आरक्षण के विरोध में नित नया अड़गा लगाते रहते हैं । इससे भी आरक्षण का वास्तविक हकदार पिछड़ जाता है ।

❐

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 21, अंक 81–82, अप्रेल–सितम्बर, 15 पृ. 112–113 ***ISSN 0974 -1100***

भारतीय समाज में सामाजिक समरसता स्थापित करने हेतु समाजसुधारकों का योगदान– अजा.जजा के संदर्भ में

डॉ. दत्तात्रय पालीवाल
डॉ. राजेश ललावत

भारतीय समाज में अनेक सामाजिक समूह एवं श्रेणियां पाई जाति है। जिनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति भिन्न–भिन्न है। कुछ सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठा सम्पन्न है। तथा कुछ समूह ऐसे है जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त पिछड़े हुए है। हिन्दू धर्म–ग्रंन्थों के अनुसार समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र। विद्ववानों का मत है कि आरंभ में यह विभाजन कर्म पर आधारित था लेकिन बाद में यह जन्माधारित हो गया। वर्तमान में हिन्दू समाज में इसी का विकसित रूप 'जाति–व्यवस्था' के रूप में देखा जा सकता है।[1]

भारतीय जाति व्यवस्था वर्ण–व्यवस्था से संबधित है। जिसमें प्राचीन काल में विभाजित चातुवर्ण व्यवस्था के सोपानतन्त्र में शनैः शनैः सैकड़ो जातियाँ और उनकी उपजातियाँ बनती गयी, जो आज तक अस्तित्व में है।[2] इस प्रकार समाज जाति आधारित हो गया। जिसके अन्तर्गत ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण की जातियों को उच्च जाति एवं शूद्र वर्ण की जातियों को निम्न जाति माना जाने लगा। उच्च जातियों की आरंभ से ही समाज में उच्च स्थिति बनी रहने से वे सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न रही। जबकि शूद्र वर्ण की जातियों को निम्न जाति माना जाने से इन जातियों पर आरंभ से ही सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएं लादी गई तथा उन्हें समाज की मुख्यधारा से अलग–थलग रखे जाने के कारण वे विपन्न एवं अभावग्रस्त रही।

सामाजिक न्याय का तकाजा है कि हम डॉ.अम्बेडकर और महात्मा गांधी के सिद्वांतों को अपनाये और समाज के शोषित, पीडित, उपेक्षित, कमजोर और पिछड़ी जातियों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ते हुये बिना किसी भेदभाव के उनके चहुँमुखी विकास हेतु आवश्यक कदम उठाये, तथा समाज में एकता, समता, सामाजिक भाईचारा, परस्पर मानवीय दृष्टिकोण एवं एकदूसरे के प्रति सद्भाव का भाव बढाकर सामाजिक समरसता बढ़ाये। वैसे देखा जाये तो एकता, समता एवं समरसता ये तीन शब्द हमारी जनता की भाषा में बहुत आम है । एकता, विचारों में एकता का होना, समता, कानून में समानता का होना तथा समरसता, भावनाओं की समानता का होना है। अगर समाज में ये तीन तत्व मौजूद है तो समाज विकास की ओर अग्रसर होगा।

सामाजिक समरसता भारतीय संस्कृति की आत्मा है। धर्म निरपेक्षता, मानवतावाद, सर्व–धर्म समभाव आदि अवधारणाऐं सामाजिक समरसता की पोषक तत्व रही है। वही विविधता में एकता की भावना समरसता का प्रतिनिधित्व करती है। मानव संगठित होकर परस्पर सहयोग से समृध्दि् एवं समानता को प्राप्त करता है।

विश्व का कोई भी देश विकास के पथ पर तभी अग्रगामी हो सकता हैं जब उसके सारे घटक एक साथ मिलकर कार्य करे। जिस प्रकार मानव शरीर के किसी एक अंग में कोई विकार आ जाये तो उसकी समुचित देखभाल के बाद ही पूरा शरीर एक होकर किसी भी क्षेत्र में योग्यतम कार्य कर सकने में समर्थ हो जाता है। ठीक उसी प्रकार समाजरूपी शरीर का कोई अंग कमजोर ओर उपेक्षित है, तो हम विकास एवं प्रगति के पथ पर आगे नही बढ सकते है। हमे विकास के पथ पर आगे बढ़ना है, तो समाज के उस उपेक्षित तबके के लोगों को जिसमें मुख्यतः अनुसूचित जाति–जनजातियाँ शामिल है, उनको समाज की मुख्य धारा में जोड़ना होगा। तभी राष्ट्र का समग्र चहुँमुखी विकास एवं प्रगति का सपना साकार हो सकेगा। समाज में सामाजिक समरसता बनी रहेगी। वही देश का विकास होगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक, जातिय, क्षेत्रीय, भाषायी आदि विभिन्नता को समेकित कर समतामूलक समाज एवं सामाजिक

समरसता की स्थापना के लिये प्रयास किये गये। जिसमें एक ओर सामाजिक समरसता की स्थापना के लिये आवश्यक संवैधानिक प्रावधान किये गये। वही दूसरी ओर दरिद्रता, भूख और बेगारी से लड़ने एवं समाज में समरसता कायम करने हेतु योजनाबद्व नीति से सामाजिक–आर्थिक विकास सम्बन्धि कार्यक्रम आरंभ किये गये।

अनुसूचित जाति–जनजातियों की स्थिति– अनुसूचित जाति–जनजाति भारतीय समाज के ऐसे अभिन्न अंग है, जिन्हे सदियों से मूलभूत मानवाधिकारों से वंचित रखा गया। जिनकी सामाजिक स्थिति प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म में निम्नस्तर की रही है। कई तरह की निर्योग्यताओं से तथा सामाजिक प्रतिबन्धों से ये जातियॉ पीड़ित थी। तथा वर्तमान में भी पीड़ित है। जिससे उनकों जीवन में आगे बढ़ने तथा व्यक्तित्व विकास करने के अवसर बहुत कम मिले। परिणामस्वरूप उन्हें समाज की मुख्यधारा से वंचित दासों के समान जीवन जीने को मजबूर होना पड़ा।

प्राचीन समय में अनुसूचित जातियों को सार्वजनिक स्थलों एवं सार्वजनिक जीवन के उपयोग के साधनों–जैसे कुओं से पानी भरना, स्कुलों और छात्रावासों में रहकर पढ़ना, अच्छे वस्त्र पहनना, सोने के आभूषण पहनना आदि की मनाही थी। तथा धोबी इनके कपड़े नही धोते थे। नाई बाल नही काटते थे। सार्वजनिक सड़कों पर यह नही चल सकते थे।

अनुसूचित जातियों के लोग अपने परम्परागत व्यवसायों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों को नही अपना सकते थे। व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में इनको नौकरी नही देते थे। इस कारण उनको अन्य रोजगार के साधन बमुश्किल से ही उपलब्ध होते थे। परम्परागत व्यवसायों से प्राप्त सीमित आमदानी मे उनको अपना जीवन–यापन करना होता था। कठिन परिश्रम करने के बाद भी इन्हें समाज के उच्च वर्ग द्वारा उसका उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। तथा उनको पुराने वस्त्रों, झूठे अन्न और त्याज्य सामग्री पर निर्भर रहना पड़ता था और कुछ सीमा तक आज भी रहना पड़ता है। इस कारण अनुसूचित जातियों की आर्थिक स्थिति भी समाज मे निम्नस्तर की बनी रही।

वही दूसरी ओर आज भी अधिकांश अनुसूचित जनजातियाँ विकास की मुख्यधारा से अनजान सुदूर वनों, पहाड़ों एवं पठारी क्षेत्रों में निवास करती है। इनकी अर्थव्यवस्था कृषि तथा वनों पर आधारित होती है। भौगोलिक पृथकता के कारण वे समाज की मुख्यधारा से अलग–थलग, सुविधाओं से वंचित जीवन जीने को विवश है, तथा प्रत्येक दृष्टि सें अत्याधिक पिछड़ें हुए है।

वर्तमान समय में अनुसूचित जाति–जनजातियों के बहुत कम लोग शासकीय तथा अशासकीय सेवा संस्थाओं में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। शासकीय तथा अशासकीय सेवा संस्थाओं में दिया जाने वाला कार्य भी विशेषकर चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का है। उच्च पदों पर कार्य करने का अधिकार एवं अवसर इन्हें बमुश्किल ही प्राप्त होता है। यदि हो भी गया तो समाज के उच्च वर्ग द्वारा इनके प्रति अनादर तथा घृणा के भाव देखने को मिलते हैं।

अनुसूचित जाति–जनजातियों के अधिकांश परिवार कम आय, रूढ़ीवादिता एवं दुर्व्यसनों में फंसे होने के कारण सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं। ग्रामीण अंचलों में इस वर्ग के बहुसंख्यक लोग मजदूरी कर अपना जीवन–यापन करते हैं। समाज के उच्च वर्ग द्वारा उनका सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर शोषण किया जाता है। यदि ये लोग ऐसी घटनाओं का विरोध करते है, तो गांव में इनका सामाजिक बहिष्कार तक कर दिया जाता है। उन्हें अस्पृश्य समझकर भेदभाव, छुआछूत, अमानवीय व्यवहार के साथ–साथ अत्याचार तक किये जाते है। हाल के वर्षों में मध्यप्रदेश एवं अन्य राज्यों में दलितों पर बढ़ते अत्याचार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भारतीय समाज में आज भी इन्हें समस्तर पर स्वीकार करने की मानसिकता नहीं बन पाई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है की भारतीय समाज में शांति और सामाजिक समरसता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारको में जातिवाद, क्षेत्रिय असंतुलन, धार्मिक कारक, आर्थिक कारक, भाषायी कारक, राजनैतिक कारक, सांस्कृतिक कारक, लिंग असमानता, अशिक्षा, परस्पर विरोधी सामाजिक मनोवृत्तियां, ग्रमीण सामुदायिक जीवन का –हास होना आदि प्रमुखता से शामिल हैं।[3] जिन्हें दूर कर समाज में सामाजिक समरसता का निर्माण करना आवश्यक है। जिसके लिये सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। जिससे समाज में सामुहिक समरसता

का भाव उत्पन्न होगा। वही लोग जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग करेंगे।

भारतीय समाज एवं सामाजिक समरसता – भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया गया है कि संविधान का मूल उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता का विकास करना है। यहॉ ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान की उद्देशिका में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व की स्थापना एवं उनके विकास पर विशेष बल देकर भारत में सामाजिक समरसता कायम रखने को प्राथमिकता प्रदान कि गई है। साथ ही न्याय को स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व से पहले रखा गया है।

सामाजिक समरसता समाज व राष्ट्र की मूलभूत आवश्यकता है। जिसका मूल उददेश्य जातिगत भेदभाव एवं अस्पृश्यता का जड़मूल से उन्मूल कर लोगों में प्रेम एवं सौदार्ह बढ़ाना तथा समाज के सभी वर्गों एवं वर्णों के मध्य एकता स्थापित करना है। किन्तु भारतीय समाज में आज भी भेदभाव एवं अस्पृश्यता की समस्या गंभीर समस्या बनी हुई है। अस्पृश्यता का तात्पर्य है 'जो छूने योग्य नही है।' अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छूने, देखने, छाया पड़ने मात्र से अपवित्र हो जाता है।[4] इसे मिटाने के प्रयास हो रहे है, पर जो लोग प्रयास कर रहे हैं, उसमें कुछ शोषित वर्ग के हैं, जो तन, मन तथा धन से लगे हुए है, पर कुछ शोषक वर्ग के लोग भी है, जिनमें से कुछ को छोड़कर ज्यादातर लोग बुद्धि और तन–मन से जब तक मानवीय आधार पर एकता एवं समानता की भावना से कार्य नही करेंगें, जब तक इस समाज में छुआछूत की भावना दूर नही होगी। छुआछूत की भावना इतनी प्रबल हैं कि इसकी गंध हमेशा आती रहती है।

वही दूसरी ओर कुछ तो अपवित्र होने पर भी कुछ पवित्र हो जाते हैं, पर दलित किसी भी समय, किसी भी ढंग से पवित्र नहीं हो पाता है। हालांकि भारतीय समाज में अपवित्रता की मान्यता काफी पहले से थी। अपवित्रता थोडे समय तक रहती थी और जन्म, मृत्यु मासिक धर्म आदि के अवसर पर पैदा होती

थी, अपवित्रता का समय बीत जाने पर या पवित्रता का संस्कार कर देने पर अपवित्रता नष्ट हो जाती थी और वह व्यक्ति फिर से पवित्र तथा समाज में मिलने योग्य हो जाता था। किन्तु अछूतपन इससे भिन्न है, यह स्थायी है। जो हिन्दु उनका स्पर्श करता है, वह तो स्नान आदि से पवित्र हो जाता है, किन्तुं ऐसी कोई चीज नही है, जो अछूत को पवित्र बना सके। इस प्रकार की मानसिकता सवर्णों में कुछ हद तक आज भी कायम है। जिसमें परिवर्तन कर भारतीय समाज में सामाजिक समरसता कायम करने के प्रयास तो समय–समय पर होते रहे है। जिसमें निम्न समाजसुधारको का योगदान महत्वपूर्ण है।

समाजसुधारकों का योगदान– सामाजिक समरसता एवं भाईचारा बढ़े इस हेतु कबीर का समाज दर्शन एक ऐसे आदर्श समाज की मान्यता को स्वीकार करता है, जिसमें छुआछूत, ऊँच–नीच, अस्पृश्यता आदि का कोई स्थान न हो। तत्कालिक सामाजिक कुप्रथाओं पर तथा छुआछूत, ऊँच–नीच और ब्राम्हण–शूद्र के भेद का कबीर ने विरोध किया। कबीर सामाजिक समरसता के बाधक तत्वों के प्रति मानव को जागरूक करते है, तथा उनकी समीक्षा करते है। साथ ही समाजकल्याण–सर्वहित की ओर उन्मुख भी करते है।[5]

समाज के निम्न वर्ग को उसका अधिकार दिलाने की भरपूर कोशिश तथा सामाजिक समरसता कायम करने में विशेश भूमिका रही उसमें सबसे अग्रणी रहे महात्मा ज्योतिबा फूले, जस्टिस रानडे, स्वामी दयानंद सरस्वती अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज में उत्पन्न शोषण की समस्या कहा है। उन्होंने अस्पृश्यता के निवारण तथा अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार की दिशा में उल्लेखनिय कार्य किया। बालगंगाधर तिलक ने गणपति उत्सवों में शूद्रों को सवर्ण हिन्दूओं के साथ स्थान प्रदान किया। उन्हें ऊँची जातियों के लोगों के साथ अपनी गणेश प्रतिमाओं को लेकर चलने की आज्ञा दी थी। लाला लाजपतराय ने आर्य समाज की प्रेरणा से जाति व्यवस्था का विरोध किया और अस्पृश्यता को समाज का कलंक बताया। उनके अनुसार जबतक तथाकथित अछूतों को समान अधिकार नही मिलता तब तक किसी अंश में सामाजिक एकता एवं सामाजिक समरसता कायम नही की जा सकती।[6]

स्वामी विवेकानन्द कहते है कि, भारतीय समाज में जिस दिन से जन्मना वर्ण–व्यवस्था ने अपनी जड़े गहरी की, समाज में अस्पृश्यता जैसी कई प्रकार की कुरीतियों ने जन्म लिया, और समाज के बीच परस्पर आदान–प्रदान बन्द हुआ। जिससे परस्पर भेद की खाई गहरी होती गई। उनका यह मानना था की समाज में व्याप्त इस प्रकार की सभी कुरीतियां अस्थायी और कुछ व्यक्ति वि ोश के स्वार्थ से ही ओतप्रोत है। जो समाज में संवादहीनता की वजह से है।[7] स्वामी विवेकानन्द ने जाति–भेद समाप्त कर समाज में एकता एवं समानता लाने हेतु कार्य किया।

महात्मा गॉधी ने अपनी हरिजन पत्रिका में अस्पृश्यता के विषय में लिखा हैं कि ''अस्पृश्यता एक ऐसा जहर है जो अपने प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों पर चढ गया है। इसलिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्मावलम्बी सभी आपस में एक दूसरे के लिए अस्पृश्य बन गये हैं। अस्पृश्यता के वास्तविक निवारण से निश्चय ही हम सभी लोग एक दूसरे के नजदीक आयेंगें ओर इस प्रकार भारत के विभिन्न समुदायों के बीच हार्दिक एकता पैदा होगी तथा सामाजिक समरसता बढ़ेगी। महात्मा गॉधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का विकृत रूप मानते थे।

गांधीजी की दृष्टि में हिन्दू धर्म के मूल सिध्दातों में छुआछूत, ऊँच–नीच के भेदभाव अथवा नारी की दासता का कोई स्थान नही है। हिन्दू धर्मग्रंन्थों में जो भी अंश इस प्रकार के है वे मूल हिन्दू संस्कारों के विपरीत है। गांधीजी हिन्दू समाज का पुर्नगठन वर्ण सिध्दांत के आधार पर करना चाहते थे।[8]

डॉ0 अम्बेडकर अस्पृश्यता के विरोधी थे, उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता दास प्रथा से भी बुरी है, अस्पृश्यता और दास प्रथा में अंतर है, जिससे अस्पृश्यता एक सामाजिक व्यवस्था की सबसे खराब मिसाल बन जाती हैं। कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अपने दास के रूप में रख सकता है उस पर कोई ऐसी बाध्यता नही है कि वह नहीं चाहने पर भी उसे रखे, किन्तु अछूत के पास कोई विकल्प नहीं है। एक अछूत के रूप में पैदा होने पर अछूत की सारी योग्यतायें उसे मिल जाती है। इस युग के महान सामाजिक परिवर्तक बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने समाज में दलितों की दयनीय स्थिति को भोगा, समझा तथा

अम्बेडकर मिशन से इस बीमारी को ठीक करके सामाजिक परिवर्तन लाने का संकल्प किया।

समाज में सामाजिक समरसता कायम कारने हेतु समरसता के पक्षधर बाबासाहब ने उपेक्षित और निर्बल लोगों के जीवन में एक चेतना का प्रकाश फैलाया। उनका मानना था कि समाज सुधार के बिना सच्ची राष्ट्रियता का उदय सम्भव नही।[9] बाबा साहब ने वर्ण व्यवस्था का सैद्वांतिक रूप से खण्डन करते हुए कहा कि मनुष्य में इतने बहुमुखी गुण हैं कि उसका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। वर्ण व्यवस्था छुआछूत की जननी हैं। वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था ने समाज को हजारों टुकडों में बांट रखा है। जाति व्यवस्था एवं छुआछूत विषमता का घर है। उनका कहना था कि राजनैतिक आजादी के पहले देश के लोगों को सामाजिक आजादी मिलनी चाहिए तथा देश के नागरिक हिन्दू या मुसलमान न रहे पहले भारतीय रहे। बाबासाहब के प्रयासों के कारण ही आज दलितों एवं आदिवासियों को समाज में सम्मान जनक स्थान मिला है।

समाजिक समरसता एवं संवैधानिक प्रावधान– भारत शासन व्दारा इस वर्ग के उत्थान हेतु विभिन्न संवैधानिक संरक्षण एवं सुविधाऐं दी जा रही है। जिसमें छुआछूत, भेदभाव समाप्त करने हेतु अस्पृश्यता अपराध अधिनियम पारित किया जिसे अस्पृश्यता अनुच्छेद–17 के अन्तर्गत दण्डनिय अपराध माना गया।[10] तथा सामाजिक समरसता में वृध्दि् हेतु प्रदेश में नागरिक संरक्षण अधिनियम 1955 के प्रावधानों के अन्तर्गत अस्पृश्यता के व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु वि ोश ध्यान दिया जा रहा है। अनुसूचित जाति–जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत वि ोश न्यायालय स्थापित किये गये है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के अधिकार के तहत मुक्त शिक्षा के तहत निजी स्कुलों में 25 प्रतिशत सीटो पर कमजोर वर्ग के छात्रों के लिये आरक्षित रहेगी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी छात्रवृत्तीयॉ दी जा रही है। वही स्वास्थ्य के क्षेत्र में उपचार हेतु शासकीय अस्पताल में भरती होने पर रूपये 20000 तक की निशुल्क उपचार सुविधा दिनदयाल अंत्योदय योजना द्वारा दी जा रही है।

इस प्रकार शासन स्तर पर सामाजिक समरसता बढ़ाने हेतु विभिन्न योजनाओं का लाभ अनुसूचित जाति–जनजाति के सदस्यों को दिया जा रहा है। ताकि वे सदियों से शोषण का शिकार रही अनुसूचित जाति–जनजातियाँ समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष खड़े हो सके तथा अपना चहुमुखी विकास कर सके।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं। परन्तु लोभ तथा स्वार्थ के कारण समाज में वर्ग विभाजन हो गया तथा असमानता आ गई। सर्वण वर्ग के लोगों ने मनगढ़त धारणाएं फेलाकर ऊँच–नीच, जातिभेद तथा वर्ण भेद को जन्म दिया है और उन्हें फैलाये रखने में मदद की है। इस धरती पर सबका समान अधिकार था, परन्तु ताकतवर, स्वार्थी और चालबाज लोग धन, धरती के मालिक बन बैठे तथा बाकी लोगों को दास बनाकर उनको गुलाम की तरह लगाकर स्वयं आराम और अमीरी की जिन्दगी जीने लगे। मालिक श्रेणीयों की रक्षा करने के लिए शासन तंत्र, पुलिस, फौज, नियम कानून की व्यवस्था आदि का निर्माण किया गया। भारत में अपने मालिकों को लोगों द्वारा 'पवित्र' मनवाने के लिए ईश्वर का भी दुरूपयोग किया गया। अपने हित में धर्मशास्त्रों की रचना की तथा घृणित वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था को बनाए रखा और अछूतों पर अनेक पाबंदिया लगाई गई। उनका शोषण करके उन्हें बुरी तरह अपमानित किया गया। भारतीय समाज मनुवाद एवं ब्राम्हणवाद के कारण मानसिक रूप से बीमार हो गया। जातिवाद तथा ऊँच–नीच की भावना से बीमार समाज को सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता हैं।

वर्तमान में देश में कुकुरमुत्तों की तरह कई दलितों के मसीहा हो रहे है। जो दलितों के विकास व उत्थान का खोखला दावा करते है। अपने राजनीतिक लाभ के लिये झूठे वादे करते है। किन्तु वास्तविकता यह हैं कि ये अवसरवादी दलितों के मसीहा केवल अपने राजनीतिक लाभ के लिये ही इस वर्ग के नाम पर अपनी राजनीति कर रहे है। समाज के विकास एवं सामाजिक समरसता से उनका कोई वास्ता नही है। जबकि सामाजिक समरसता एवं विकास तभी संभव है। जब समाज के सभी घटक स्वयं इस कार्य को करने का संकल्प करे।

जब हम समाज में सामाजिक समरसता की बात करते है तो इसका सीधा तात्पर्य यह हैं कि समाज के सारे समूह बन्धुता, समानता व आपस में मिलजुलकर

परस्पर सहयोग के साथ एक दूसरे के कंधे से कंधा मिलाकर अपना एवं सम्पूर्ण समाज का सर्वागीण विकास कर रहे है। जबकि वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। वर्तमान में देश में सामाजिक समरसता के नाम पर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये जाकर उनके कल्याण हेतु कई तरह की घोषणाऐं की जा रही है। कुछ राजनीतिक दलो के नेतागण दलित, शोषित, पीड़ित कमजोर वर्ग के पार्टी कार्यकर्ताओं के घर भोजन कर उन्हें अपने घरो में बिठाकर भोजन करा रहे। ताकि सर्वसमाज में समरसता का भाव उत्पन्न हो सके। किन्तु देखना यह होगा कि वास्तविकता में क्या उक्त कल्याणकारी योजनाओं व घोषणाओं का लाभ समाज के कमजोर तबके के लोगों तक पहुॅच पा रहा है, अथवा नहीं। साथ ही क्या सामाजिक समरसता अंतर्गत समाज की मुख्यधारा में उन्हें जोडने हेतु किये जा रहे इस प्रकार के प्रयास सार्थक होगें, यह भी देखना होगा।

साथ ही वास्तव में उक्त वर्ग के लोगों को समाज की मुख्यधारा से जोडने हेतु हमने क्या–क्या प्रयास व कार्य किये। और वर्तमान में इस वर्ग के चहॅुमुखी विकास तथा समाज में दलित, शोषित, पीडित वर्ग को समान अवसर व सम्मान इस हेतु क्या प्रयास किये जा रहे है यह भी देखना होगा। किन्तु यहॉ यह प्रश्न उठता हैं कि ये सवाल कौन और किससे पूछे जाये। यह चिन्तनीय विषय है।

वर्तमान में सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था अंतर्गत कुछ मायने में तो वर्ग भेद और छुआछूत पूर्णतया मिट गये है। जैसे सिनेमाघरो में हम साथ–साथ बैठकर फिल्मे देखते है, सार्वजिनिक स्थानों पर साथ–साथ रहते है। होटलो में, रेस्तरां में, चाय की गुमटियों पर एक दूसरे के उपयोग में लिये गये बर्तनों का इस्तेमाल करते है। ऐसे कई उदाहरण है, किन्तु हम घरो में होते है तो ऐसे अवसर बहुत कम ही देखने को मिलते है। आज भी कही–कही पर अतिथि घर आ जाये तो पानी पिलाने व उसे घर के अंदर प्रवेश देने से पहले उससे उसकी जाति पूछी जाति है। कही जगह उत्सव, शादी–ब्याह में खाने–पीने, उठने बैठने की अलग व्यवस्था की जाती है। छुआछूत की समस्या आज भी भारतीय समाज में पूर्ण रूप से समाप्त नही हो पाई है। जो सही व न्यायाचित नही है।

जबकि भारतीय संविधान में दलितों के उत्थान हेतु संवैधानिक प्रावधान किये गये है। ताकि उनको भी समाज में बराबरी का दर्जा मिल सके। किन्तु

कही–कही तथा विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रो में आज भी भेदभाव एवं छूआछूत का व्यवहार दलितों के साथ किया जा रहा है। आये दिन ऐसी घटनाये पढ़ने तथा सुनने को मिलती है। इस तरह की घटनाओं पर अंकुश तभी लग सकता है, जब उच्च जातियों की दलित समुदाय के प्रति मानसिकता बदलेगी। वही दूसरी ओर निम्न जातियों को भी कटूता भूलानी होगी। जो देश, समाज व समुदाय के हित मे हैं। जिससे सामाजिक समरसता एक दूसरे के प्रति बनी रहे। सभी वर्ग बिना किसी भेदभाव के एक दूसरे से परस्पर सहयोग एवं मिलजुलकर अपना चहॅुमुखी विकास करे तथा प्रगति के पथ पर आगे बढ़कर देश के नवनिर्माण में अपनी अहम् भूमिका व दायित्वों का निर्वाह करे।

सुझाव–समाज में सामाजिक समरसता कायम रखने के लिये तथा समाज के कमजोर दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग का विकास करने हेतु, तथा उन्हे समाज की मुख्यधारा में लाने हेतु समाज में जनजाग्रति संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन बुद्वीजीवी वर्गो द्वारा किया जावे। तथा उसमें शासन–प्रशासन की भागीदारी भी सुनिश्चित हो।

हम सब एक है, हम साथ–साथ है। चलो पढ़ाये कुछ कर दिखाये आदि नारे लगाने से हम यर्थाथ में कुछ भी हासिल नही कर सकते। जरूरत है सबकों बुनियादी शिक्षा तथा समान शिक्षा की सुविधाऐं मुहैया कराने की। सभी को अवसर की समानता हो तभी सामाजिक परिवर्तन हो सकेगा। क्योंकि परिवर्तन की लड़ाई तब तक अधुरी है, जब तक वह समानता की अवधारणा को पूरा नही करती। इसलिये जरूरी हैं कि बिना किसी भेदभाव के अवसरों की समानता हो, जिससे हम समाज के कमजोर तबके के लोगों में स्वाभिमान जाग्रत कर सकते है। ताकि वे आरक्षण के झूठे आश्वासनों व बेसाखी के सहारे की बजाए स्वयं उपर उठकर अपनी योग्यता व क्षमतानुसार अपने बलबुते पर आगे बढ़ने की प्रेरणा ले सके।

हमें जातिवाद और छुआछूत जैसी घृणित भावनाओं को त्याग कर अपनी उर्जा का उपयोग देश के विकास में करना होगा। तभी हम विश्व को नेतृत्व देने की क्षमता हासिल कर पाएंगे। हमें देश के विकास के लिए सामाजिक समरसता के बीज बोने होंगे तथा एकजुटता का प्रमाण देकर भारत के समग्र विकास में

भागीदार बनना होगा। जिससे कि समाज में सामाजिक समरसता बढ़े तथा हमेशा के लिये कायम रहे। तभी देश व समाज का विकास होगा, प्रगति होगी।

❐

सन्दर्भ –

1. *डब्लूडब्लूडब्लू•विकिपीडिया• आर्ग/एस/2सीयू*
2. *डॉ. राजेश शर्मा –पूर्वदेवा (सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका),मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, अक्टू 2011–मार्च 2012 पृष्ठ क्र. 16*
3. *डॉ. अरूणकुमार, पूर्वदेवा (सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका),मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, अक्टुबर 2014–मार्च 2015 पृष्ठ क्र. 26,30–34,*
4. *प्रो.एम.एल.गुप्ता एवं डॉ.डी.डी.शर्मा समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा 2008 पृ ठ क्र. 220,*
5. *हिन्दीवागमय1.ब्लागस्पॉट.इन/2008/12/ब्लाग–स्पॉट 4215.एचटीएमएल*
6. *रीना शर्मा, पूर्वदेवा (सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका), मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन, अक्टू 2005–मार्च 2006 पृष्ठ क्र.16,*
7. *डब्लूडब्लूडब्लू•पीन्यूज•इन/समानता–और–समरसता/*
8. *डॉ. निधी ठाकुर, पूर्वदेवा (सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका), मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन,अप्रेल–सितम्बर 2008 पृष्ठ क्र. 23*
9. *रांचीएक्सप्रेस.कॉम/214670*
10. *अनुसूचित जाति जनजातियों के कमिश्नर की वार्षिक रिपोर्ट–1955 (पाचंवी रिपोर्ट), दूसरा भाग, परिशिष्ट–2*

पूर्वदेवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मुलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन कोप्रवर्त्त करना है। जिससेकि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके और देश में राष्ट्रीय एकरूपता, सामाजिक न्याय एवं सहिष्णुता की भावना वास्तविक आकार ग्रहण कर सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं सेमौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

- लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित दोप्रतियों / **PM-5** कृति देव10 **(Kruti Dev 10)** मेंटाईप, सीडीएवंएकप्रिंटआउटसहित भेजें। **email-mpdsaujn@gmail.com**
- प्रत्येक आलेंख के साथ आवश्यकतानुसार फुटनोट्स अथवा संदर्भ सूची अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
- लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखेहों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखेगयेलेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे
- लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि किसी अन्य भाषा में प्रकाशित होचुके हों तो उनका हिन्दी में अनुवाद भी अपवाद रूप में प्रकाशनार्थ स्वीकार किया जा सकता है।
- सम्पादक मंडल कोकिसी भी लेख कोप्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करनेका पूर्ण अधिकार है। अतः वापसी हेतु रचना के साथ लेखक का पता लिखा लिफाफा उपयुक्त डाक टिकट के साथ संलग्न होना चाहिये।
- समीक्षार्थ नव प्रकाशित पुस्तकों की दोप्रतियाँ प्रेषित की जानी चाहिये।
- प्रत्येक पुस्तक समीक्षा लेख के साथ समीक्षित पुस्तक की एक प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
- पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है, अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें।

ग्राहक शुल्क की दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार हैं-

*	आजीवन शुल्क	संस्थागत रू.2500/-	वैयक्तिक रू.2000/-
*	वार्षिक शुल्क	संस्थागत रू.350/-	वैयक्तिक रू.300/-

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.)456010

म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लियेपी.सी बैरवा द्वारा न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित ***आर.एन.आई.रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95*** .

सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन

ISSN 0974-1100